खंड III
मुगल शासन का सुदृढ़ीकरण

समय रेखा

मुगल इतिहासलेखन

नवीन रुझान तथा प्रवृत्तियाँ

मुगल राज्य की प्रकृति

तुर्क-मंगोल विरासत

मुगल राजस्व का सिद्धांत

मुगल प्रशासन

मनसब तथा *जागीर*

मुगल भू-राजस्व प्रणाली

THE PEOPLE'S UNIVERSITY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

अकबर द्वारा शिशु अब्दुर रहीम खान-ए खानान का स्वागत, पांडुलिपि चित्रण *अकबरनामा, circa* 1590-1595

चित्रकार : अनंत

फोटोग्राफ स्रोत : विक्टोरिया एवं एलबर्ट म्यूज़ियम

स्रोत : https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Young_Abdul_Rahim_Khan-I Khana_ being_ received_ by_Akbar,_Akbarnama.jpg

इकाई 8 मुग़ल राज्य का इतिहासलेखन*

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 मुग़ल इतिहासलेखन में नई प्रवृत्तियाँ तथा विषय-वस्तुएँ

8.3 मुग़ल राज्य की प्रकृति

8.3.1 प्राच्य निरंकुशता का सिद्धांत

8.3.2 केन्द्रीकृत राज्य का सिद्धांत

8.3.3 पितृसत्तात्मक-नौकरशाही आधारित राज्य का सिद्धांत

8.3.4 खंडीय राज्य का सिद्धांत

8.3.5 संशोधनवादी सिद्धांत

8.3.6 मुग़ल राज्य का धर्मतंत्रीय मॉडल

8.3.7 गोला-बारूद आधारित राज्य का सिद्धांत

8.3.8 सिंहावलोकन

8.4 सारांश

8.5 शब्दावली

8.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.7 संदर्भ ग्रंथ

8.8 शैक्षणिक वीडियो

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आपः

- मुग़ल राज्य की प्रकृति के अध्ययन के लिए अपनाए गए इतिहासलेखन संबंधी विभिन्न दृष्टिकोंणों से परिचित हो पाएँगे,
- उन विभिन्न कारकों का विश्लेषण कर पाएँगे जिन्होंने विभिन्न इतिहासकारों द्वारा मुग़ल राज्य की प्रकृति के संबंध में किए गए अध्ययनों को प्रभावित किया और आकार दिया,
- मुग़लों के अधीन राजनीतिक संगठन की प्रकृति को समझ पाएँगे, और
- मुग़ल राज्य संबंधी इतिहासलेखन को समझ पाएँगे।

8.1 प्रस्तावना

इतिहासलेखन का अध्ययन किसी विषय विशेष से संबंधित अकादमिक रचनाओं और सिद्धांतों के इतिहास का अध्ययन है, यहाँ इसका संदर्भ मुग़ल राज्य की प्रकृति से है। राज्य की प्रकृति के इतिहासलेखन का संबंध पूर्व-औपनिवेशिक भारत में विशेष उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु राजनीतिक सत्ता के उपयोग के अन्वेषण से है। मध्यकालीन भारतीय राज्य-प्रशासन और इसके सहवर्ती सामाजिक तथा राजनीतिक प्रभावों का अध्ययन विवादास्पद विषय-क्षेत्र रहा है, विशेषकर भारतीय मुग़ल राज्य के संबंध

* डॉ. दिव्या सेठी, सेंटर फॉर हिस्ट्रॉरिकल स्टडीज़, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

में। मुग़ल राज्य का अध्ययन साम्राज्यवादी इतिहासकारों द्वारा हिंदू-मुस्लिम विभाजन पर ज़ोर देने के साथ शुरू हुआ था। औपनिवेशिक विजय के स्थापित हो जाने के बाद यह दुष्प्रचार अकादमिक क्षेत्र में व्यवस्थागत ढंग से फैलता गया, और इतिहास की पाठ्य-पुस्तकों में भी प्रवेश कर गया।

औपनिवेशिक सत्ता मुग़ल राज्य-तंत्र में प्रचलित व्यवहारों के आधार पर स्वयं का औचित्य साबित कर सत्ता पर अधिकार करना चाहती थी। इतिहास लेखन में धर्म को एकमात्र निर्धारक कारक के रूप में स्थापित करने और जेम्स मिल[1] द्वारा भारतीय इतिहास का हिंदू, मुस्लिम और ब्रिटिश, तीन कालों में विभाजन किए जाने के साथ, आधुनिक इतिहासलेखन दो धाराओं में विकसित हुआ। मध्यकालीन मुस्लिम राज्य के रूप में, एक ओर तो, मुग़ल राज्य को भारत में इस्लाम के विस्तार करने वाले के रूप में देखा गया, वहीं दूसरी ओर, एक वैकल्पिक दृष्टिकोण विकसित हुआ जिसने मुग़ल सत्ता द्वारा देशज प्रजा के सम्मुख प्रस्तुत शुरुआती चुनौतियों को रखने के साथ कालांतर में उनके साथ परस्पर सामंजस्य को नज़र में रखा। स्वयं को 'धर्मनिरपेक्ष' राष्ट्रवादी के रूप में प्रस्तुत कर रहे इस दूसरे पक्ष ने प्रथम पक्ष के इतिहास लेखन को 'साम्प्रदायिक' करार दिया।

प्रारम्भ में मुग़लों के अधीन सैन्य और राजनीतिक संगठन पर केंद्रित लेखन को बढ़ावा मिला। डब्ल्यू. एच. मोरलैंड जैसे इतिहासकार अपनी रचना, *एग्रेरियन सिस्टम ऑफ़ मोस्लेम इंडिया*, में ब्रिटिश विद्वानों द्वारा समर्थित मुग़ल राज्य की प्रकृति संबंधी सिद्धांतों और अनुमानों को ही स्वीकारते हैं। हालांकि मोरलैंड ने अपने अध्ययन में ऐतिहासिक दस्तावेज़ों के विश्लेषण को भी शामिल किया है। स्वतंत्रता-पश्चात् काल में यूरोप-केंद्रित सिद्धांतों और राष्ट्रवादी सिद्धांतों में पतन नज़र आने के साथ, इतिहास लेखन के आधार को इन दो उपागमों से दूर ले जाना वाला बड़ा मोड़ 1956 में डी. डी. कोसांबी[2] तथा 1963 में इरफ़ान हबीब[3] के लेखन के साथ आया, इतिहास लेखन की प्रक्रिया ने मार्क्सवादी प्रभाव का साक्षात्कार किया। धर्म की केन्द्रीयता के स्थान पर वर्गों के अस्तित्व तथा आर्थिक प्रक्रियाओं पर अब ध्यान केंद्रित किया गया।

मुग़लकालीन भारत के संबंध में सर्वाधिक मौलिक कार्य, जिसे ख्याति मिली, इरफ़ान हबीब के द्वारा मुग़ल राज्य में कृषि व्यवस्था पर किया गया अध्ययन था। इसमें फ़ारसी स्रोतों को अधिक महत्व दिया गया। प्रो- हबीब का कार्य, संदर्भ हेतु ऐसा मौलिक कार्य था जिसको आधार बनाकर विपुल ऐतिहासिक ग्रंथों की रचना की गई। यद्यपि इसी समय, अन्य इतिहासकारों के साथ-साथ मोहिबुल हसन और हारून ख़ान शेरवानी जैसे उदार राष्ट्रवादी इतिहासकार भी मुग़ल शासन पर लिखते रहे। इनमें से शेरवानी ने क्षेत्रीय स्रोतों पर व्यापक शोध किया तथा दक्खन के इतिहास को कई खंडों में प्रकाशित किया। खालिक़ अहमद निज़ामी तथा सैय्यद अतहर अब्बास रिज़वी ने मुग़लों के अधीन धार्मिक नीति के पहलुओं पर कार्य किया।

मार्क्सवादी लेखन से प्रभावित अलीगढ़ इतिहासकारों ने मुग़ल राज्य के इतिहासलेखन में एक नई धारा का विकास किया। अलीगढ़ इतिहासकार भी मुग़ल साम्राज्य में संसाधनों के वितरण के संबंध में प्राच्यवादी इतिहासकारों के समान ही मत रखते थे। इन इतिहासकारों के द्वारा मुग़ल राज्य को अत्यधिक केंद्रीकृत और व्यवस्थागत नौकरशाही वाले राज्य के रूप में देखा गया। इन्होंने इसका श्रेणीकरण एक प्रकार के 'विजेता राज्य' के रूप में किया। राज्य द्वारा अपनी शक्तियों का कुछ अंश हस्तांतरित किया गया था ताकि लोगों से अधिकतम राजस्व वसूला जा सके, वहीं इसके साथ नियंत्रण और संतुलन की एक सुस्थापित व्यवस्था को बनाया गया था ताकि केंद्रीय सत्ता को बनाए रखा जा सके।

कई ऐसे विषय थे जिन पर अलीगढ़ इतिहासकारों द्वारा विचार नहीं किया गया। मुख्यतः 1556 से 1707 तक के ही कालक्रम पर विशेष ध्यान दिया गया जो अकबर से औरंगज़ेब के शासन के बीच का काल है। सापेक्षिक रूप से 17वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध पर कम ही ध्यान दिया गया। शेख अबुल फ़ज़ल द्वारा लिखी गई *आईन-ए अकबरी* पर विशेष बल दिया गया। इसके साथ ही मुग़ल साम्राज्य

---

[1] मिल, जेम्स, (1817), *द हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इंडिया*, 6 भाग (लंदनः बॉल्डिन, क्रेडॉक एवं जॉय).

[2] कोसांबी, डी.डी., (1956) *एन इंट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑफ इंडियन हिस्ट्री* (बॉम्बेः पॉप्युलर बुक डिपो).

[3] हबीब, इरफ़ान, (1963) *द एग्रेरियन सिस्टम ऑफ़ मुगल इंडिया 1556-1707* (बॉम्बे: एशिया पब्लिशिंग हाउस).

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

की 'केंद्रीकृत तथा नौकरशाही आधारित' 'निरंकुश' सर्वाधिकारवादी प्रकृति की विशेषता का कोई भी आधार अकबर से पूर्व और औरंगज़ेब के बाद के बादशाहों के काल में शायद ही देखने को मिलता है। इसके अलावा यह भी तर्क दिया गया है कि मुग़ल राज्य व्यापक रूप से एक 'अधिग्रहणकारी' राज्य था जो किसानों से लगभग समस्त अधिशेष को वसूल लेता था और इसका उपयोग अनुत्पादक विलासपूर्ण उपभोग पर करता था।

1960 में, कैंब्रिज स्कूल – इनके द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण के कारण इन्हें ऐसे जाना जाता है हालांकि जो अनिवार्य रूप से कैंब्रिज से संबंध नहीं रखते थे – ने अभिलेखागार आधारित शोध और अभिजात्यों के लेखन पर ध्यान केंद्रित किया। इन इतिहासकारों द्वारा क्षेत्रीय तथा स्थानीय स्तर पर राजनीतिक व्यवस्थाओं की जटिल अंतःक्रिया पर अधिक ध्यान दिया गया है। मुग़ल राज्य को अप्रत्यक्ष शासन प्रकृति का माना गया है जिसमें सैन्य सफलता के अलावा बादशाह को *मनसबदारों* से बांधने वाला कोई भी अन्य कारण नज़र नहीं आता है। इनके अनुसार यह शासन मध्यस्थों के समूह तथा संरक्षक-संरक्षितों (patron-client) के संबंधों द्वारा निर्मित आधार पर निर्भर था। कैंब्रिज स्कूल के प्रति आलोचनात्मक रुख रखने वाले सबाल्टर्न स्कूल ने मुग़ल राज्य को एक अलग ही नज़रिए से देखा है।

1980 में सी. ए. बेली ने इस ओर इशारा किया कि मुग़ल राज्य पर किए गए प्रारम्भिक लेखनों का ध्यान पूर्णतः राज्य की एजेंसी (अभिकर्तत्व; agency) पर केंद्रित था तथा इसने व्यवसायिक समुदायों की एजेंसी को पूर्णतः अनदेखा किया है। वह मुग़ल शासन से औपनिवेशिक भारत में संक्रमण में निरंतरता की बात करते हैं जिसमें आर्थिक क्रियाओं को क्षेत्रीय अभिजात्यों द्वारा अंजाम दिया जा रहा था जिनका उदय मुग़ल काल में हुआ था तथा जो अब विकेंद्रीकरण के पर्याय बन गए थे। इस विचार का मुज़फ़्फ़र आलम द्वारा भी समर्थन किया गया जिन्होंने *जागीर* और *इज़ारा* की संस्थाओं को राज्य-प्रशासन में होने वाले विकास को प्रकट करने वाली संस्थाओं के रूप में चिह्नित किया है।

स्टीफ़न ब्लेक, तथा जान एफ. रिचर्ड्स ने मुग़ल राज्य को एक 'पितृसत्तात्मक-नौकरशाही' राज्य कहा है। सबाल्टर्न इतिहासकारों ने 'ऊपर से नीचे को देखने की इतिहास की समझ' ('उच्च वर्ग से निम्न वर्ग की ओर व्याख्या करने की इतिहास की समझ') से दूर हटकर नई दिशा दी है। इन अध्ययनों में, मुग़ल राज्य की मौजूदा अवधारणाओं में अभिजात्यों और राष्ट्रीय नायकों पर दिए गए ज़ोर की आलोचना की गई है। इन्होंने मुग़ल राज्य के अधीन आम जनता के इतिहास के पुनरुद्धार का प्रयास किया है। सबाल्टर्न स्कूल का यह मानना है कि भारतीय समाज में स्थानीय समुदाय काफ़ी स्वायत्त और स्वशासी थे। ये समुदाय सीमित बाह्य हस्तक्षेप के साथ अपने धार्मिक विश्वास तथा रीतियों से जुड़े रहे। इन्होंने इतिहास की मौखिक स्रोत-सामग्री का उपयोग किया है। लेकिन, जैसा कि अन्य इतिहासकारों के समूहों ने इंगित किया है, ऐतिहासिक शोध के प्रति इनके दृष्टिकोण की प्रमुख कमज़ोरी, व्यापक प्रभाव वाले परिमाणात्मक तथ्यों पर दिया गया कम ध्यान है।

मुग़ल राज्य को समझने हेतु प्रयुक्त संशोधनवादी सिद्धांत की आलोचना उनके द्वारा ऐतिहासिक स्रोतों के किए गए विश्लेषण तथा अपनी प्रकृति में कम सुस्पष्ट होने के लिए की गई है। 1980 तथा 1990 के दशक में, सांस्कृतिक तथा सामाजिक इतिहास के क्षेत्र में ऐतिहासिक अनुसंधान के नए उपागमों का उदय हुआ। इन रचनाओं में निर्देशात्मक ग्रंथ की संकल्पना नज़र आने लगती है। उपमहाद्वीप के इतिहास को देखने के नज़रियों में आने वाले बदलावों के साथ-साथ मुग़ल राज्य के विभिन्न पहलुओं के अध्ययन हेतु नई अंतर्दृष्टियाँ विकसित हुई हैं, जिनमें चित्रकला में नज़र आने वाली ऐतिहासिक घटनाओं के विश्लेषण से लेकर दरबारी संस्कृति में मौजूद समस्याओं का निम्न वर्ग से उच्च वर्ग की ओर अध्ययन तक शामिल हैं।

इरफान हबीब के अनुसार, मुग़ल साम्राज्य की सत्ता का संकेंद्रीकरण उच्च अधिकारियों और मुग़ल शासक वर्ग के हाथ में था। जब इरफान हबीब के ग्रंथ *एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुग़ल इंडिया* का द्वितीय संस्करण 1999 में प्रकाशित हुआ, कई नए अध्ययन मुग़ल राज्य के संबंध में तब तक सामने आ चुके थे। राज्य को केवल राजकोषीय-प्रशासनिक आयाम से देखना एक पुरानी परंपरा बन चुकी थी। इतिहासकार कुछ विशेष ऐतिहासिक ग्रंथों को प्रामाणिक स्थिति प्रदान करने से आगे बढ़ गए हैं तथा रोज़मर्रा की ज़िंदगियों और संबंधों का ऐतिहासिक विश्लेषण कर रहे हैं। मुग़ल राज्य के शासन-तंत्र को समझने हेतु नए और ताज़ा उपागम ग्रहण किए जा रहे हैं।

8.2 मुग़ल इतिहासलेखन में नई प्रवृत्तियाँ तथा विषय-वस्तुएँ

- **मुगलों के अधीन धर्म के प्रश्न** ने व्यापक दिलचस्पी को पैदा किया है। विशेषतः सूफ़ी तथा अन्य संत सरीखे व्यक्तित्वों द्वारा छोड़े गए ग्रंथ, जिन्हें पहले दोयम दर्ज़ा दिया जा रहा था, इस काल में अपना ध्यान खींचने में सफल रहे हैं।

- **मुग़ल शासनकाल में भाषा, साहित्य और संस्कृति के प्रति रुचिः** इन अध्ययनों ने भारतीय राज्य के संबंध में स्थापित पूर्व-अवधारणाओं को तोड़ा है, जिसमें राज्य को एक प्राच्यवादी-जड़ता की निरंतरता के रूप में देखा गया था। मुग़ल अभिजात्यों द्वारा अपनाई गई सांस्कृतिक परंपराओं पर विशेष ध्यान दिया गया है तथा शोधकर्ताओं के बीच रुचि का विषय बना हुआ है।

- **मुग़ल इतिहास के पहले नजरअंदाज किए गए कालों**, जैसे सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तथा सत्रहवीं पर ध्यान।

- **क्षेत्रीय शोध-प्रबंध** को आवश्यक तरज़ीह मिली है; बिहार, बंगाल और पंजाब के क्षेत्रों का विस्तृत अध्ययन हुआ है। फ़रहत हसन के ग्रंथ *स्टेट एंड लोकेलिटी इन मुग़ल इंडियाः पावर रिलेशंस इन वेस्टर्न इंडिया 1572-1730* को इस श्रेणी में अलीगढ़ परंपरा का एक मौलिक ग्रंथ माना जाता है।

- मुग़ल शासन के अंतर्गत **कला और वास्तुकला का 'दृश्य संस्कृति' के रूप में समेकन।** इन दोनों ही क्षेत्रों का विश्लेषण मुग़ल सत्ता के व्यापक प्रचार और विचारधारा के घटकों के रूप में किया जाने लगा है। यह पूर्वकालीन अध्ययनों से भिन्न है जिनमें कला के इतिहास और वास्तुकला के अध्ययन को इतिहास के दो अलग-अलग प्रक्षेत्र माना जाता था।

- **फ़ारसी ग्रंथों के पाठ्यात्मक संपादनों का अध्ययन** जैसे, मुहम्मद बाक़िर नज्म-ए सानी का *मौइज़ाह-ए जहाँगीरी* का अध्ययन किया गया।

- अंत में, **लैंगिक अध्ययनों** (Gender studies) पर भी ध्यान दिया गया, न केवल स्त्रीत्व के संबंध में या मुग़ल *हरम* से संबंधित अध्ययनों के क्षेत्र में, बल्कि मुग़ल संसार में पुरुषत्व के विचार के संबंध में भी। इन अध्ययनों ने स्वयं को केवल मुग़ल अभिजात्य वर्ग तक ही सीमित नहीं रखा, बल्कि व्यापक स्तर पर आमजन को शामिल करने की कोशिश भी की है।

- अध्ययन के इन नए क्षेत्रों के अतिरिक्त, **राजनीतिक विचारधारा**, **राजनीतिक अर्थव्यवस्था**, **विज्ञान** तथा **प्रौद्योगिकी** के क्षेत्र विद्वानों के ध्यान को आकर्षित करना जारी रखे हैं।

बोध प्रश्न-1

1) मुग़ल राज्य की प्रकृति के अध्ययन में अपनाए गए शुरुआती दृष्टिकोणों का वर्णन कीजिए।

....

....

....

2) साम्राज्यवादी इतिहासकारों द्वारा मुग़ल साम्राज्य के किन पहलुओं पर ध्यान दिया गया था?

....

....

....

3) मार्क्सवादी इतिहासकारों द्वारा मुग़ल राज्य को किस तरह से परिभाषित किया गया था? उनके द्वारा मुग़ल राज्य के किए गए अध्ययन और सबाल्टर्न अध्ययन समूह द्वारा किए गए अध्ययन के बीच मुख्य अंतर क्या थे?

....

....

....

4) निम्नलिखित में से कौन स्वतंत्रता पश्चात् युग में मुग़ल भारत संबंधी इतिहासलेखन में यूरोप-केंद्रित तथा राष्ट्रवादी सिद्धांतों से इतर विचारधारा को प्रमुख रूप से प्रदर्शित करते हैं?

   क) इरफ़ान हबीब

   ख) मोहिबुल हसन

   ग) हारून ख़ान शेरवानी

   घ) ख़ालिक़ अहमद निज़ामी

5) निम्नलिखित में से किसकी मुग़ल इतिहासलेखन की नई प्रवृत्ति नहीं है?

   क) सत्ता की दृश्य संस्कृति के भाग के रूप में कला तथा वास्तुकला

   ख) भाषा, साहित्य और संस्कृति

   ग) राजनीतिक-अर्थव्यवस्था, विज्ञान और प्रौद्योगिकी

   घ) शासन के एकमात्र अभिकर्ता के रूप में राज्य

   ङ) उपर्युक्त सभी

6) भारत में मुग़ल राज्य की प्रकृति के अध्ययन तथा विश्लेषण से संबंधित कौन सी नई प्रवृत्तियाँ तथा उपागम हैं?

   ....

   ....

   ....

8.3 मुग़ल राज्य की प्रकृति

मुग़ल राज्य की प्रकृति का अध्ययन, विशेषकर भारत में पूर्व औपनिवेशिक राज्य की प्रकृति के अध्ययन के संदर्भ में, बहुत ही दिलचस्प विषय है। मुग़ल साम्राज्य को समझने के लिए विभिन्न इतिहासकारों द्वारा प्रतिपादित कई सिद्धांत हैं:

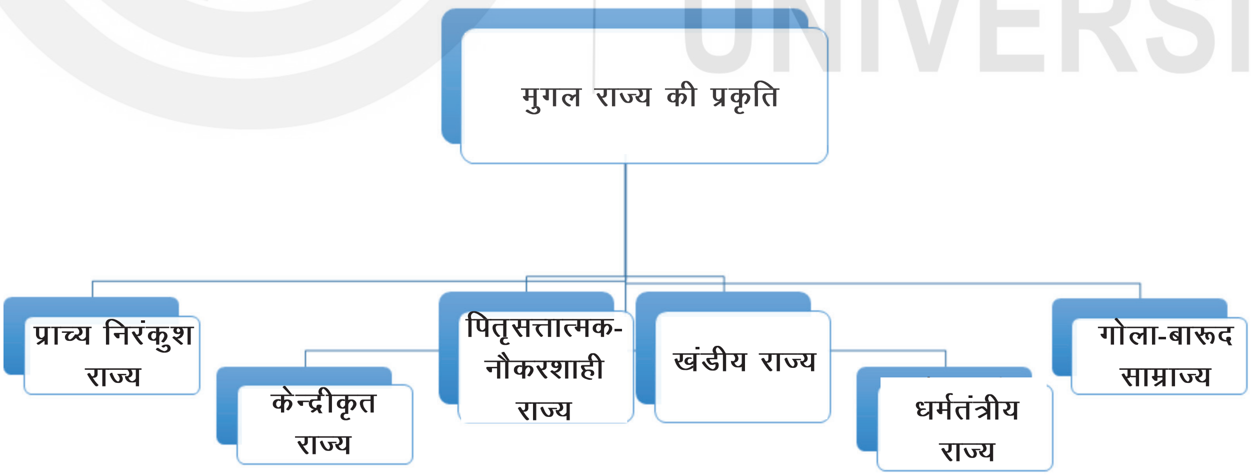

8.3.1 प्राच्य निरंकुशता का सिद्धांत

एशियाई निरंकुशता (Asiatic Despotism) और एशियाई उत्पादन पद्धति (Asiatic Mode of Production) की संकल्पनाएँ एक भिन्न संदर्भ में कार्ल मार्क्स के लेखन में विकसित हुईं। पूर्व-औपनिवेशिक भारत में राज्य की प्रकृति के सम्बन्ध में, फ्रांस्वा बर्नियर[4] ने प्राच्य निरंकुश राजशाही के सिद्धांत का प्रतिपादन किया था, जो अपने चरित्र में मूलतः यूरोपीय राज्य से भिन्न थीं। इस सिद्धांत के अंतर्गत, ये राजतंत्र ऐसे थे जहाँ:

1) राजा भूमि का स्वामी तथा राजस्व का अधिग्रहणकर्ता था

2) यूरोपीय लॉर्ड्ज़ से भिन्न, कर उगाहने वालों द्वारा अस्थायी भूमि अधिकार धारण किया जाता था, ऐसी व्यवस्था जो राज्य के पास भू-स्वामित्व को प्रकट करती थी

फ्रांसिस विलियम बकलर ने, अपने लेख 'दि ओरियंटल डेस्पॉट' में, मुग़ल संप्रभुता को 'नैगमिक राजत्व' के प्रतिरूप में वर्णित किया है, जहाँ सभी अधिकारी इस व्यवस्था के 'सदस्य' थे, बजाय कि मात्र बादशाह के नौकर होने के। शासन की यह व्यवस्था किसानों के शोषण और आर्थिक विकास व लोगों की समृद्धि में गिरावट में परिणत हुई। यह तत्व कि कर के संग्रहण में किसी सीमा की अनुपस्थिति थी, यह राज्य को 'निरंकुश' चरित्र प्रदान करता था। ब्रिटिश इतिहासकारों का यह मत था कि उन्होंने इस प्राच्य निरंकुश राज्य में स्वतंत्रता का प्रवेश कराया।

जेम्स मिल[5] तथा जॉन क्रॉफ़र्ड ने बर्नियर द्वारा प्रतिपादित मत को ग्रहण किया तथा ईस्ट इंडिया हाउस में यह तर्क दिया कि भारत दुनिया में सबसे कम करारोपण वाला देश है। बाद में, डब्ल्यू. एच. मोरलैंड[6] ने अपनी प्रसिद्ध कृति में यह मत रखा कि मुग़ल काल में लोगों के आर्थिक जीवन में मौसम की परिस्थितियों के बाद सबसे प्रभावी कारक राज्य-प्रशासन था। प्राच्य निरंकुशता का समस्त सिद्धांत भूमि और कराधान के आधार पर टिका था।

राज्य की संप्रभुता के इस मॉडल का इतिहासकारों द्वारा बारीक़ी से विश्लेषण किया गया। इतिहासकारों जैसे, आर. पी. त्रिपाठी – *सम आसपेक्ट्स ऑफ़ मुस्लिम एडि़मिनिस्ट्रेशन;* इब्न हसन – *दि सेंट्रल स्ट्रक्चर ऑफ़ मुग़ल एम्पायअर;* तथा पी. सरन – *प्रोविंशियल गवर्नमेंट्स ऑफ़ द मुग़ल्स,* ने दृढ़तापूर्वक यह कहा कि इस राजतंत्र के विभिन्न प्रशासनिक संस्थान देश की भौगोलिक तथा सांस्कृतिक संस्थाओं पर आधारित थे। उन्होंने तर्क दिया कि मुग़ल शासन में करों के अतिरेक की गुंजाइश कम ही थी। 1947 के बाद, ऐतिहासिक लेखन में मार्क्सवादी प्रभाव अधिक उजागर हुआ। मार्क्सवादी प्रभाव में पूर्व-औपनिवेशिक भारतीय राज्य की व्याख्या का मुख्य प्रतिपादन डी. डी. कोसांबी[7] द्वारा किया गया। डी. डी. कोसांबी द्वारा तर्क दिया गया कि शासन में परिवर्तन के साथ 'उत्पादन-सम्बन्धों' में विशिष्ट तत्वों का विकास हुआ।

8.3.2 केंद्रीकृत राज्य का सिद्धांत

इस मत के अनुसार केंद्र में स्थित राज्य की सत्ता, परिधीय क्षेत्रों से राजस्व के अंतर्प्रवाह द्वारा समाज के सभी स्तरों तक प्रविष्ट होती है। मोटे तौर पर इस दृष्टिकोण को केंद्र-आधारित सिद्धांत/साम्राज्य- केन्द्रित दृष्टिकोण कहा गया है। मुग़ल राज्य के इस सिद्धांत के प्रतिपादक इतिहासकारों द्वारा शासन की अन्य पद्धतियों के अलावा, स्थानीय शक्तियों पर सत्ता का आरोपण कर राजनीतिक एकीकरण को बढ़ावा देने वाली नीतियों, शासन के धर्मनिरपेक्ष नियम तथा शासक वर्ग की मिश्रित संरचना पर बल दिया गया है। इन इतिहासकारों द्वारा उदार राष्ट्रवादी राज्य के दायरे में इस सिद्धांत का विकास किया गया ताकि साम्राज्यवादी मत का खंडन किया जा सके। मुग़ल राज्य का लक्ष्य सांप्रदायिक और राजनीतिक एकीकरण था।

केंद्रीकृत राज्य के सिद्धांत के अनुसार, मध्यस्थ अभिकर्ताओं के माध्यम से राज्य-प्रशासन की समाज के सभी स्तरों तक पहुँच थी। इन मध्यस्थों में व्यापारी, शिल्पकार और किसान पूरी तरह से राज्य पर निर्भर थे। इस तरह इस शासन तंत्र में राज्य और समाज घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए दो पक्ष थे। प्रत्येक परिघटना केंद्र के ही इर्द-गिर्द घूमती थी। केंद्रीकृत राज्य के सिद्धांत के अंतर्गत समाज के सभी पहलुओं को उच्च वर्ग के पहलू से देखा जाता था। इस सिद्धांत के ऊपर 18वीं और 19वीं शताब्दी के इतिहासवेत्ताओं का काफी प्रभाव रहा है जिन्होंने मुग़ल राज्य को इसी प्रकार चित्रित किया था। अकबर के अधीन प्रशासन को व्यवस्थागत रूप देने, विशेषकर *मनसबदारी* तथा विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न

---

[4] बर्नियर, फ्रांस्वा, (1916) *ट्रैवल्स इन मुगल एम्पाअर A.D. 1656-1668,* अनुवादित ए. कान्सटेबल (ऑक्सफोर्ड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

[5] मिल, जेम्स, (1817) *द हिस्ट्री ऑफ़ ब्रिटिश इंडिया,* 6 भाग (लंदन बाल्डविन, क्रडॉक एवं जॉय).

[6] मोरलैंड, डब्ल्यू. एच., (1929) *एग्रेरियन सिस्टम ऑफ़ मोस्लेम इंडिया* (इलाहाबादः सेंट्रल बुक डिपो).

[7] कोसांबी, डी.डी., (1956) *एन इंट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑफ़ इंडियन हिस्ट्री* (बॉम्बेः पॉप्युलर बुक डिपो).

विभागों की समरूपता की विद्यमानता, पर अत्यधिक बल दिया गया है। यह विभाग तथा केंद्रीकृत प्रशासन बाद के बादशाहों के समय में जारी रहे और मज़बूत होते गए।

बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में मुग़ल राजव्यवस्था तथा प्रशासन के संबंध में तब तक हो चुके अनुसंधानों को सतीश चंद्रा ने संश्लेषित किया। इरफान हबीब ने इस केंद्रीकृत राज्य के सिद्धांत को स्वीकार किया और केंद्रीकृत अधिकारी वर्ग पर विशेष बल दिया जो राजस्व का संग्रह करता था। उनके मुताबिक यह एक पदसोपानबद्ध व्यवस्था थी जिसमें संसाधनों का बंटवारा अधिकारी वर्ग और *ज़मींदारों* के वर्ग के बीच होता था। प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत यह अवधारणा ऐतिहासिक तथा सरकारी दस्तावेज़ों के साथ-साथ स्थानीय दस्तावेजों के गहन विश्लेषण पर आधारित थी। विश्लेषण के मार्क्सवादी तरीक़ों का इस्तेमाल कर इन अध्ययनों ने मुग़ल राज्य के संबंध में प्रबल रही राष्ट्रवादी व्याख्या को ही कई सारभूत आयामों के संबंध में और ठोस रूप दिया।

मुग़ल कृषि व्यवस्था का द्विध्रुवीय प्रकृति वाले पुराने मॉडल, जो राज्य तथा कृषक वर्ग के दो मुख्य तत्वों से निर्मित था, का स्थान अब मुग़लों के अधीन समाज के त्रिस्तरीय विभाजन ने ले लिया – शासक वर्ग (राज्य), *ज़मींदार* तथा किसान। राज्य को शोषण के प्रमुख तंत्र के रूप में देखा गया। इसने *ज़मींदार* वर्ग के बीच सोपानक्रम को पुनर्स्थापित किया।

1970 के दशक में अमेरिकी समाजशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित खंडीय राज्य (segmentary state) के मॉडल के बढ़ते प्रभाव में केंद्रीकृत राज्य का मॉडल कई इतिहासकारों की आलोचना के दायरे में आया। डगलस स्त्रूसैंड की पुस्तक *द फॉर्मेशन ऑफ द मुग़ल एंपायर* ने मुग़ल साम्राज्य की केंद्रीकरण को बढ़ावा देने वाली प्रकृति पर सवाल उठाया। यद्यपि उन्होंने इस राजसत्ता के अधीन रूपांतरण के चार स्तरों की पहचान की हैः केंद्रीय सत्ता, बादशाह अकबर की स्वीकार्यता, *मनसबदारी* व्यवस्था तथा बाद के काल में शासन में होने वाले परिवर्तन। उन्होंने मुग़ल राज्य के संबंध में दोनों ही सिद्धांतों को एकीकृत करने का प्रयास किया है। आलोचकों द्वारा पूछा गया वास्तविक प्रश्न मुग़ल राज्य द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त मुगल नियंत्रण के स्तर को लेकर है, जो केंद्र से दूर स्थित थे।

8.3.3 पितृसत्तात्मक-नौकरशाही आधारित राज्य का सिद्धांत

मुग़ल राज्य के अध्ययन से संबंधित नए उपागमों में से एक राज्य की प्रकृति को पितृसत्तात्मक-नौकरशाही के शासन के नज़रिए से देखता है। इस सिद्धांत का स्रोत मैक्स वेबर के पितृसत्तात्मक मॉडल में है। इस मॉडल के अंतर्गत, पूर्व-आधुनिक शासनतंत्र के अधीन पितृसत्तात्मक राजव्यवस्था तथा नौकरशाह-प्रशासन की संरचना के बीच एक निरंतर विभाजन बना रहता है। शासक राज्य पर उसी तरह शासन करता है जिस तरह एक पितृसत्ताधारी अपने घर और पितृसत्तात्मक क्षेत्र पर शासन करता है। विशाल शासन तंत्र को पितृसत्तात्मक क्षेत्र का ही विस्तार समझा जाता है, जहाँ सैन्य तथा न्याय जैसे सभी क्षेत्रों पर सर्वोच्च सत्ता के प्राधिकार का विस्तार होता है।

राजनीतिक संगठन का यह पितृसत्तात्मक मॉडल जब व्यापक क्षेत्र में विस्तृत तथा कार्यरत होता है तो इसे पितृसत्तात्मक-नौकरशाही साम्राज्य कहा जाता है। विभिन्न युक्तियों और नीतियों के माध्यम से प्रभुसत्ता वितरित होती है ताकि विभिन्न क्षेत्रों को शासित किया जा सके। यह सुनिश्चित करने के लिए कि प्रशासन सफलतापूर्वक कार्य करता रहे, सेना की श्रेणियाँ संगठित की गई थीं, जो शासक के प्रति निष्ठावान थीं। इस विशाल सेना को दो समूहों में बांटा गया था, एक जो सीधे बादशाह की प्रत्यक्ष सेवा में थी और दूसरी जो बादशाह के अधीनस्थों के सैनिक थे तथा अपने कमांडर की कमान के अधीन थे।

इसी तरह, प्रशासन के अन्य क्षेत्रों में भी इसके सदस्य बादशाह की कृपापर्यंत कार्य करते थे और एक हद तक उसके प्रति निष्ठावान तथा स्वामीभक्त रहते थे। इस अधिकारी वर्ग को राजस्व का एक बड़ा हिस्सा आवंटित किया गया था। समय गुज़रने के साथ इस व्यवस्था की परिणति बादशाह द्वारा धारण की गई शक्ति के कमज़ोर पड़ जाने में हुई। अतः बादशाह द्वारा राज्य के अधिकारियों की निरंकुश शक्ति में वृद्धि को नियंत्रित करने के लिए नियंत्रण और संतुलन का प्रयत्न किया जाता था। उदाहरणार्थ, अधिकारियों के स्थानांतरण की नीति अपनाने के साथ ही बादशाह को सीधे सूचना देने तथा रिपोर्ट करने वाले खुफ़िया अधिकारियों का एक विशाल तंत्र भी स्थापित किया गया था। दरबार तथा राज सिंहासन सुस्पष्ट नियमों से संचालित होते थे, जो बादशाह तथा उसकी प्रजा के बीच पितृसत्तात्मक संबंधों की पुष्टि करते थे। प्रशासन के संगठन में शाही राजपरिवार की केन्द्रीयता निरंतर बनी रही।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

स्टीफ़न ब्लेक जैसे इतिहासकारों ने *आईन-ए अकबरी* में वर्णित उच्च नौकरशाहाना *मनसबदारी* व्यवस्था का विश्लेषण किया है जो पितृसत्तात्मक-नौकरशाही वाले राज्य के इस मॉडल की पुष्टि करता है, जिसमें *मनसबदार* तथा मुग़ल सेना के अन्य घटक इस पितृसत्तात्मक-नौकरशाही आधारित साम्राज्य से आबद्ध रहते थे। सैन्य अधिकारियों को उन्नति तथा स्थानांतरण के समय दरबार में बुलाया जाता था। *मनसबदारों* के रूप में उनकी पदोन्नति शाही राजपरिवार के प्रति अपने कर्तव्यों के निर्वाह तथा स्वयं बादशाह की स्वीकृति के बाद होती थी। इसी तरह, भू-राजस्व प्रशासन की व्यवस्था पितृसत्तात्मक-नौकरशाही के पैटर्न का अनुकरण करती थी। जब बादशाह विभिन्न क्षेत्रों में दौरे पर होता था तब भी वह नियमित रूप से दरबार लगाता था और राज्य के कार्यों का संपादन अत्यधिक प्रभावी ढंग से ज़ारी रहता था।

बहुत से अन्य समकालीन एशियाई राज्य – ईरान का सफ़ावी साम्राज्य, तुर्की का ऑटोमन साम्राज्य और चीन का मिंग साम्राज्य भी इतिहासकारों द्वारा पितृसत्तात्मक-नौकरशाह राज्य के रूप में श्रेणीबद्ध किया गया है। ऐसा माना जाता है कि मंगोल और तुर्की पूर्वजों का प्रभाव मुग़ल राज्य के कार्य संचालन में नज़र आता है। केंद्रीकरण की गहन प्रवृत्ति तथा संगठित नौकरशाही वाले प्रशासन की व्यवस्था को मुग़लों द्वारा मध्य एशिया से विरासत में प्राप्त माना गया है। इनमें से कुछ तत्वों को भारत के पहले के साम्राज्यों, मौर्य साम्राज्य और दिल्ली सल्तनत में भी देखा जा सकता है। और अन्य कुछ तत्व बादशाह बाबर द्वारा उपमहाद्वीप में अपने साथ लाए गए थे जिन्हें बाद में अकबर द्वारा और परिकृत तथा ठोस रूप प्रदान किया गया। अकबर के बाद के बादशाहों ने मोटे तौर पर उसके द्वारा स्थापित नीतियों का पालन किया।

निम्नलिखित विशेषताएँ मुग़ल राज्य की पितृसत्तात्मक-नौकरशाही की प्रकृति में चरितार्थ होती थीं:

- दैवीय पितृसत्ताधारी के रूप में बादशाह
- प्रशासन में शाही राजपरिवार केंद्रीय तत्व के रूप में
- सैन्य अधिकारियों की बादशाह पर पूर्ण निर्भरता
- शाही राजपरिवार द्वारा नियंत्रित एक सुसंरचित प्रशासन
- बादशाह द्वारा अपनाई गई विभिन्न नियंत्रण और संतुलन की युक्तियाँ

8.3.4 खंडीय राज्य का सिद्धांत

1970 के दशक के बाद मुग़ल राज्य का इतिहासलेखन अमेरिकी समाजशास्त्रियों के खंडीय राज्य के मॉडल से प्रभावित हुआ। खंडीय राज्य मॉडल में, किसी भी औपचारिक राज्य-संस्था के खंड या घटक अस्तित्व में होते हैं। ये खंड स्वयं में स्वतंत्र एवं सुसंगत होते हैं तथा संप्रभु को इन पर नाममात्र की सत्ता हासिल होती है। इतिहासलेखन के इस दृष्टिकोण के अनुसार, केंद्र की परिधीय या क्षेत्रीय इकाई तक पहुँच को नहीं स्वीकारा गया है। केंद्र तथा परिधीय क्षेत्रों के बीच के संबंध की प्रकृति को राजनीतिक के बजाय आनुष्ठानिक प्रकार का माना गया है। आनुष्ठानिक दायित्व ही परिधि को केंद्र से जोड़ते थे।

खंडीय राज्य मॉडल के मुताबिक़, समाज एक पदसोपानिक संरचना में बँटा हुआ था। प्रत्येक खंड या इकाई मिलकर उत्तरोत्तर इकाई बनाती थी। उदाहरणार्थः गाँव, स्थानीय क्षेत्र, परा-स्थानीय क्षेत्र और विस्तृत राज्य। बर्टन स्टाइन ने भारत के सांस्कृतिक और सामाजिक परिवेश में किसी केंद्रीकृत राज्य-संस्था के विकास के विचार पर आपत्ति उठाई है। दक्षिण भारत के संदर्भ में, उन्होंने 'खंडीय राज्य मॉडल' का प्रतिपादन किया है। इस दृष्टिकोण में शासन के अध्ययन हेतु संस्थाओं जैसे जाति, पदस्थान तथा धर्म को अधिक महत्व दिया गया है जिससे राज्य की तथा स्थानीय प्राधिकारियों की सत्ता को समझा जा सके। यह सिद्धांत भी स्वयं उन अन्य इतिहासकारों की आलोचना से मुक्त नहीं है, जिन्होंने दक्षिण भारत के संदर्भ में इस दृष्टिकोण को नकार दिया है।

डगलस ई. स्त्रूसैंड[8] ने इस मॉडल का विस्तार मुग़ल भारत के लिए किया है, विशेषकर 1556 से 1582

[8] स्त्रूसैंड, **डगलस ई., (1989)** ***द फ़ार्मेशन ऑफ़ मुगल एम्पायर*** **(ऑक्सफ़ोर्डः ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).**

के बीच के कालखंड के लिए। स्त्रूसैंड ने मुग़ल राज्य में मौजूद सैन्य तथा राजकोषीय पदसोपानक्रम, साम्राज्य के प्रशासन तंत्र में विभिन्न समूहों का आगमन तथा बादशाह द्वारा प्रयुक्त संप्रभुता की प्रकृति, विशेषकर अकबर के अधीन विकसित हुई व्यवस्था का अध्ययन किया है। अकबर के शासनकाल में कई परिवर्तन और रूपांतरण दृष्टिगोचर होते हैं – केंद्रीय शक्ति का विस्तार, संप्रभु-सत्ता की स्वीकार्यता तथा *मनसबदारी* व्यवस्था का मानकीकरण। मुग़ल राजत्व का सिद्धांत इस देश में प्रचलित कई पूर्व-अवधारणाओं का सम्मिश्रण था। अकबर द्वारा स्थापित मुग़ल नीतियों, जैसे *जज़िया* की समाप्ति, *सुलह-ए कुल* की अवधारणा तथा उदार धार्मिक नीति के पालन के व्यापक प्रशासनिक तथा सामाजिक प्रभाव हुए थे।

स्त्रूसैंड ने बर्टन स्टाइन द्वारा प्रतिपादित खंडीय राज्य के मॉडल को मुग़ल राजव्यवस्था में *ज़मींदारी* क्षेत्रों के संदर्भ में रखकर देखा है तथा केंद्रीय प्रशासन के सीधे नियंत्रण में आने वाले *परगनों* के संदर्भ में केंद्रीकृत राज्य के दृष्टिकोण को अपनाया है। केंद्रीकृत राज्य मॉडल के विपरीत खंडीय राज्य का मॉडल स्वायत्त क्षेत्रीय शक्तियों के अस्तित्व का तर्क देता है, जिनका केंद्रीय प्राधिकार से कोई आर्थिक संबंध नहीं था। इतिहासकारों ने एक व्यापक दृष्टिकोण अपनाया है। कई अधोस्तरीय (निम्न तबके की स्थिति को ध्यान में किए गए अध्ययन) अध्ययन सामने आए हैं जिनमें समाज के निम्न तबके तथा राज्य की विभिन्न प्रक्रियाओं में सक्रिय भागीदारी के रूप में उनके जीवन पर ध्यान केंद्रित किया गया है।

बोध प्रश्न-2

1) किसने मुग़ल राज्य को प्राच्य-निरंकुश राज्य के रूप में श्रेणीबद्ध किया है? और क्यों?

....

....

....

2) भारत में मुग़ल राज्य के संदर्भ में केंद्रीकृत राज्य सिद्धांत तथा खंडीय राज्य मॉडल के बीच अंतर कीजिए?

....

....

....

3) पितृसत्तात्मक-नौकरशाही आधारित राज्य के प्रमुख प्रतिपादकों की व्याख्या कीजिए।

....

....

....

8.3.5 संशोधनवादी सिद्धांत

सी.ए. बेली ब्रिटिश शासन के अधीन निरंतरता का सिद्धांत प्रस्तुत करते हैं जिसमें आर्थिक शक्ति धारण करने वाले 'सामाजिक वर्गों' के प्राधिकार को स्वीकारा गया है जिन्होंने मुग़ल साम्राज्य के पतन के बाद अपनी निष्ठा ब्रिटिश सत्ता को स्थानांतरित कर दी थी। मुग़ल राजव्यवस्था के उनके अध्ययन में, विकेंद्रीकरण और क्षेत्रीय राजव्यवस्थाएँ मुग़ल राज्य के चरित्र को निर्धारित करने वाले प्राथमिक कारक के रूप में उभरती हैं। मुग़ल राज्य के दख़ल का परम्परागत क्षेत्रीय ग्रामीण अभिजात्यों द्वारा प्रतिरोध किया गया। अतः, अठारहवीं शताब्दी में साम्राज्य का पतन आर्थिक मोर्चे पर पतन के रूप में परिणत नहीं हुआ और मुग़ल साम्राज्य तथा औपनिवेशिक सत्ता में एक तरह की निरंतरता विद्यमान थी।

सी.ए. बेली तथा संजय सुब्रह्मण्यम ने, बाद में, एक 'सम्पर्क प्रक्षेत्र' या 'अपरिभाषित प्रक्षेत्र' – एक ऐसा क्षेत्र जहाँ समाज तथा राज्य आपस में मिलते थे – की अवधारणा प्रस्तुत की। ये 'अपरिभाषित प्रक्षेत्र' उस स्थिति को दर्शाते हैं जहाँ केंद्रीकृत राज्य मॉडल और खंडीय राज्य मॉडल के तत्व आपस में मिलते हैं। यहाँ ऊपर से संचालित उपक्रम और नीचे से किए गए अनुबंध आपस में मिलाते हैं। सुब्रह्मण्यम और बेली के मुताबिक़, कुछ विशेष सामाजिक समूह राज्य तथा समाज के बीच संपर्क बिंदु का काम करते थे। दक्षिण भारत में, ये सामाजिक समूह मोटे तौर पर राजस्व वसूल-कर्ता या

'पोर्टफ़ोलियो कैपिटलिस्ट' (portfolio capitalist) थे, जो आर्थिक प्रक्रियाओं में भागीदार थे। उन्होंने राज्य को सुनिश्चित आर्थिक लाभार्थों के प्रति आश्वस्त किया।

इस प्रकार, सी. ए. बेली राज्य में आर्थिक संवृद्धि के लक्षणों की पहचान करते हैं। इस आर्थिक संवृद्धि के अभिकर्ता (एजेंट) हमेशा राज्य द्वारा सृजित, जैसे राज्य द्वारा नियुक्त *मनसबदार* या *जागीरदार,* नहीं थे, इनमें से कुछ संवृद्धि के अभिकर्ता (एजेंट) पहले से ही समाज के ढाँचे में आबद्ध थे और जो अपने अधिकार क्षेत्र में अधिकाधिक संसाधनों को लाकर अपनी शक्ति को बढ़ाते गए। वे किसी ख़ास क्षेत्र की राजनीतिक अर्थव्यवस्था का गठन करते थे। इसी प्रकार, इतिहासकार मुज़फ़्फ़र आलम[9] ने *जागीर* तथा *इज़ारा* की संस्थाओं में संवृद्धि की पहचान राज्य-प्रशासन की संवृद्धि के रूप में की है। फ्रैंक पर्लिन भारतीय इतिहास के उस आर्थिक अध्ययन की आलोचना करते हैं जो मुग़ल तथा मराठा केंद्रित दृष्टिकोण पर बल देती है। उनके लिए, राजनीतिक शक्ति की मूलभूत इकाई *वतन* थी।

हाल ही में, फ़रहत हसन[10] द्वारा किए गए अध्ययन ने मुग़ल राज्य के मूल्यांकन की अवधारणाओं में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। वह मुग़ल राज्य को किसी केंद्रीकृत, एकीकृत या पितृसत्तात्मक-नौकरशाही के खाँचे में नहीं रखते हैं, इसके बजाय उनके शोध के मुताबिक़ मुग़ल सत्ता स्थानीय अभिजात्यों के साथ दिन-प्रतिदिन की अंतःक्रिया का परिणाम थी। साम्राज्यिक-स्थानिक गठबंधन और संबंध का गहन संजाल ही मुग़लों की शक्ति के स्रोत को बनाए रखता था। उदाहरणार्थ, विभिन्न क्षेत्रों में राज्य की माँग को व्यापारिक संगठन अपने सदस्यों या सहयोगियों तक पहुँचाते थे। खम्भात तथा सूरत के स्थानीय व्यापारिक संगठन गुजरात के क्षेत्र में यह भूमिका निभा रहे थे। अभिजात्य घराने राज्य के प्राधिकारियों के अधीनस्थ नहीं थे। वे राज्य के अधिकारियों द्वारा उनके उत्पीड़न के ख़िलाफ़ तथा राज्य तक अपनी माँग पहुँचाने के लिए कई तरह की युक्तियाँ अपनाते थे। आम जनता ने विशाल शासन तंत्र के अधीन स्वयं को बनाए रखने के कई तरीक़े खोज लिए थे। राज्य के अधिकारियों द्वारा हर दिन संघर्ष का सामना करना पड़ता था, चाहे वे दरबार में हो या बाज़ार में।

8.3.6 मुगल राज्य का धर्मतंत्रीय मॉडल

राज्य के कार्य-संचालन में इस्लाम की भूमिका, भारत के औपनिवेशीकरण तथा स्वतंत्रता के लिए संघर्ष के संदर्भ में मुग़ल राज्य की प्रकृति का विश्लेषण करने वाले शुरुआती ऐतिहासिक शोधों ने यह प्रश्न प्रस्तुत किया है कि क्या मुगल राज्य एक धर्मतंत्रीय राज्य था या नहीं। इस तरह की व्याख्या और भी पहले से ही की जाती रही है। विजय की अवधारणा का सत्ता का औचित्य साबित करने के लिए उपयोग मध्यकाल में बहुप्रचलित प्रवृत्ति रही है। आधुनिक उपनिवेशवाद ने विजय का अर्थ बदल दिया, जो मुख्यतः एक राष्ट्र के आर्थिक लाभ के लिए दूसरे राष्ट्र के संसाधनों को नियंत्रित किए जाने के संदर्भ से की जाती हैं।

डगलस ई. स्त्रूसैंड जैसे इतिहासकार, जो केंद्रोन्मुख अध्ययन तथा खंडीय राज्य को आधार मानने वाले मुग़ल राज्य के अध्ययनों, दोनों, की आलोचना करते हैं, ने एक नए सिद्धांत का प्रतिपादन किया है जिसे मिश्रित इस्लामी प्रशासन सिद्धांत कहा जाता हैं। इस सिद्धांत के मुताबिक, एक स्तर पर अर्थात साम्राज्य केंद्रित क्षेत्र में प्रशासन ऊपर से आरोपित होता था, जबकि प्रांतीय स्तर पर स्थानीय रूप से विकसित प्रशासन अस्तित्व में बना हुआ था। मुग़ल राज्य की प्रकृति के अध्ययन का यह मॉडल पतनोन्मुख-अध्ययन नहीं है।

चाहे, विभिन्न बादशाहों के अधीन मुग़ल दरबार में व्यक्तिगत रूप से कलमबद्ध करने वाले समकालीन इतिहासकारों की इतिहासलेखन की पद्धति हो या विभिन्न क्षेत्रों में विजय प्राप्त कर सत्ता की उद्घोषणा की सामान्य प्रवृत्ति, '*काफ़िर* ' और '*कुफ़्र*' जैसे संदर्भ, उदाहरणार्थ, पानीपत (बाबर) और कांगड़ा (जहाँगीर) की लड़ाइयों में – इस तरह की वर्णन-पद्धति और घटनाएँ मुग़ल राज्य के धर्म-प्रचार की इच्छा को दर्शाती हैं। लेकिन वास्तविक प्रश्न यह है कि किस हद तक इस्लाम राज्य के कार्य-संचालन में संस्थागत रूप से शामिल था। इतिहासकार हरबंस मुखिया ने इस प्रश्न के उत्तर हेतु दो कसौटियां रखी हैंः प्रजा के इस्लाम में धर्मांतरण का पहलू तथा दूसरा, साम्राज्य के क्षेत्रीय विस्तार

---

9 आलम, मुज़फ़्फ़र, तथा संजय सुब्रह्मण्यम (1998) *द मुग़ल स्टेट,* 1526-1750 (नई दिल्लीः ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

10 हसन, फ़रहत, (2004) *स्टेट एंड लोकैलिटी इन मुग़ल इंडियाः पावर रिलेशंस इन वेस्टर्न इंडिया, c.1572-1730* (कैम्ब्रिजः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस).

में इस्लामी क़ानून का क्षेत्राधिकार।

अलग-अलग बादशाहों की अपने शासनकाल में सहिष्णुता की प्रकृति अलग-अलग थी। मुग़लों द्वारा शासित केंद्रीय क्षेत्रों में भी कभी मुस्लिम जनसंख्या का अनुपात 15 प्रतिशत से अधिक नहीं रहा है। किसी ठोस साक्ष्य के अभाव में मुग़ल राज्य को एक धर्मतंत्रीय, इस संबंध में एक इस्लामी राज्य, के रूप में चिह्नित करना अतिरेक ही होगा।

मुग़ल शासनकाल में इस्लाम एक वैधता प्रदान करने वाला तत्व था लेकिन यह केवल एकमात्र तत्व नहीं था। कई अन्य कारक भी थे जो केंद्रीय सत्ता को वैधता प्रदान करने के लिए इस्तेमाल किए गए थे। उदाहरणार्थ, अकबर के शासनकाल के दौरान बादशाह द्वारा स्वयं राजत्व का एक नया सिद्धांत विकसित किया गया जो साम्राज्य का पितृसत्तात्मक मुखिया था और उसके द्वारा सामाजिक सौहार्द पर बल दिया गया और न ही राज्य द्वारा किए जाने वाले न्याय और प्रशासन का एकमात्र आधार इस्लामी क़ानून था। जहाँ इस्लाम ने शासकों को एक पहचान प्रदान की, वहीं एक ऐसी प्रशासनिक व्यवस्था के आधार पर शासन को चलाया जाता था जिसमें शक्ति और संसाधनों की अधिकारियों तथा समाज के विभिन्न तबक़ों के बीच साझेदारी होती थी।

मुग़ल राज्य के अधिकारी वर्ग की मिश्रित प्रकृति तथा केंद्रीकृत संस्थाओं की स्थापना के अतिरिक्त मुग़ल शासकों को संप्रभुता के निरपेक्ष या निरंकुश होने पर बल देते हुए देखा जा सकता है। निरंकुशता के दर्ज़े को वैधता प्रदान करते हुए विभिन्न क्षेत्रीय प्रदेशों में अभिजात्य स्वायत्त सरदारों/राजाओं से वैवाहिक संबंध बनाए गए। बादशाह तथा उसकी प्रजा के बीच एक सीधा संबंध स्थापित किया गया। यह भी कि, धर्म के मामले में इस्लाम के दायरे में स्वयं का रुतबा प्रतिष्ठित करने के प्रयासों के अलावा बादशाह ग़ैर-मुस्लिम प्रजा के बीच भी आध्यात्मिक मार्गदर्शक की स्थिति का दर्ज़ा रखता था। हालांकि राजनीतिक, बौद्धिक तथा लोकप्रिय आयामों में राज्य के कार्य-संचालन में एक ढाँचे के रूप में इस्लाम की उपस्थिति स्पष्ट थी। *झरोखा दर्शन* जैसी प्रथाओं, सहिष्णु धार्मिक नीतियों तथा शासन की वैधता को आध्यात्मिक सहमति पर आधारित करने के प्रयासों ने, न केवल शासन तंत्र को स्थिरता प्रदान की, बल्कि साथ ही साथ इसकी निरपेक्ष रूप से इस्लामी धर्मतंत्रीय प्रकृति का होना भी असम्भव लगता है।

8.3.7 गोला-बारूद आधारित राज्य का सिद्धांत

हाल ही में, पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्य में शुरू हुए गोला-बारूद या आग्नेयशस्त्रों के बढ़ते प्रयोग का संबंध दुनिया-भर में बढ़ती साम्राज्यों की शक्ति के निर्णायक कारक के रूप में किया गया है। मार्शल जी.एस. हॉजसन जैसे इतिहासकारों ने एशिया में विस्तृत अत्यधिक केंद्रीकृत साम्राज्यों को 'गोला-बारूद' साम्राज्य के रूप में श्रेणीबद्ध किया है। बारूद की प्रौद्योगिकी की शुरुआत से आए परिवर्तन भारत में राज्य-निर्माण के सन्दर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण थे। अन्य साम्राज्य जिन्हें 'गोला-बारूदी' साम्राज्य के रूप में श्रेणीबद्ध किया गया है, वे हैंः ऑटोमन साम्राज्य, सफ़ाविद साम्राज्य और उज़बेक खानेत।

पंद्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में देश के कई क्षेत्रों में कई तरह के प्रारम्भिक गोला-बारूदी तोपख़ाने के अस्तित्व में होने की बात स्वीकारी जाती है। उत्तर भारत में आग्नेयशस्त्रों से जुड़े एक कार्मिक को ***काशकंजिर*** कहा गया है। कश्मीर में, एक अस्त्र का संदर्भ मुस्लिम ज़बान में ***तोपा*** तथा कश्मीरी बोली में ***कंडा*** के रूप में पाया जाता है। समकालीन ग्रंथ, जैसा कि इक़्तिदार आलम ख़ान ने उद्धृत किया है, जैसे ***मआसिर-ए महमूदशाही*** (1468) तथा ***रियाज़-उल इंशा*** (1470) उन दिनों मालवा तथा दक्खन के क्षेत्र में किंचित प्राथमिक प्रकार के तोपख़ाने के प्रयोग का उद्धरण प्रदान करता हैं। कुछ मज़बूत किलेबंदियों का घेरा – चंपानेर, माण्डलगढ़, विजयमंदिरगढ़ – बारूदी तोपख़ाने की विनाशकारी शक्ति पर प्रकाश डालता है। इनमें से कई किलों को पन्द्रहवीं शताब्दी में नए सिरे से पुनर्निर्मित करना पड़ा था।

ये क़ीमती तोपें कुछ समृद्ध क्षेत्रीय राज्यों जैसे विजयनगर तथा मालवा के अधीन थीं। आमतौर पर *ज़मींदार* तथा स्वायत्त सरदार इस तरह के उपकरणों का ख़र्चा नहीं उठा सकते थे। कई शक्तिशाली क्षेत्रीय राज्यों ने अपने परिधीय या पड़ोसी क्षेत्रों में क़िलों को बारूदी तोपख़ाने की सहायता से जीता, और इस तरह से राज्य-निर्माण की प्रक्रिया को सुदृढ़ किया। इसका परिणाम शक्तिशाली राज्यों के क्षेत्रीय विस्तार में निकला। इस प्रक्रिया के साथ अन्य कारक जैसे स्थानीय स्वायत्त सरदारों पर बढ़ते

नियंत्रण तथा राजस्व स्रोतों में बढ़ोत्तरी भी थे। इसने शक्तिशाली राज्यों द्वारा अपनी शक्ति को मज़बूत किए जाने की प्रक्रिया को और बल प्रदान किया।

पश्चिम के प्रभाव तथा सोलहवीं शताब्दी में बाबर द्वारा भारत में लाई गई विशेषज्ञता के कारण तोपख़ाने में नई तकनीकों और पद्धतियों के प्रचलन की शुरुआत के साथ, गोला-बारूद शक्तिशाली राज्यों की सुदृढ़ता को ठोस सहारा देने वाला प्रतीक बन गया। यद्यपि यह प्रौद्योगिकी भी बिना चुनौतियों के साथ नहीं आई थी, जैसे इसके परिवहन में मुश्किल तथा गोले दाग़ने की धीमी रफ़्तार की समस्या। इन चुनौतियों के बावजूद, गोला-बारूद का इस्तेमाल मुख्यतः शक्ति के प्रदर्शन के प्रतीक रूप में किया जाता था। मुग़लों द्वारा साम्राज्य के सुदृढ़ीकरण की प्रक्रिया में गोला-बारूद ने कोई प्रमुख भूमिका नहीं निभाई थी। 1568 में चित्तौड़ की घेरेबंदी तथा 1570 में रणथम्भौर की घेरेबंदी के अलावा आग्नेयशस्त्रों ने अकबर के सैन्य अभियानों तथा अन्य मुग़ल बादशाहों के शासन के अधीन भी विभिन्न इलाक़ों में साम्राज्य के विस्तार में कोई ख़ास भूमिका नहीं निभाई थी। सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक दौर में, हल्के तोपख़ानों का घेराबंदी के अभियानों तथा लड़ाई के मैदानों में प्रभावी इस्तेमाल हुआ।

गाड़ियों के ऊपर लगी हुई तोपों तथा तोड़ेदार बन्दूकों ने केंद्रीकृत मुग़ल साम्राज्य के सुदृढ़ीकरण व उसके विस्तार में सहायता की। सत्रहवीं शताब्दी में, आग्नेयशस्त्रों के संबंध में महत्वपूर्ण नवाचारों में से एक, घूमने वाले कुंडों की सहायता से ऊँटों की पीठ पर तोपों को रखना था। तोड़ेदार बंदूक़ें युद्ध में प्रभावकारी आग्नेयशस्त्र थीं। कई बार युद्ध की व्यूह रचना में, इनका इस्तेमाल तोप-गाड़ियों को लड़ाई के मैदान में सुरक्षा के घेरे में रखने के लिए होता था। तोड़ेदार बन्दूकों के कारण होने वाला ताक़तवर हमला और व्यापक स्तर का विनाश, घुड़सवार तीरंदाज़ों द्वारा लगातार चलाए जाने वाले तीरों की तुलना में, युद्ध में निर्णायक भूमिका निभा सकता था। औसतन, एक *मनसबदार* के अधीन एक टुकड़ी में पाँच घुड़सवारों के ऊपर एक बंदूकची होता था। ये बंदूकची बादशाह के सीधे नियंत्रण में रहने वाली टुकड़ियों का अनिवार्य हिस्सा थे तथा स्थानीय सरदारों पर नियंत्रण रखने हेतु महत्वपूर्ण घटक बने रहे।

केवल कुछ ही इतिहासकारों ने मुग़ल युद्ध-कला तथा साम्राज्य की केंद्रीकरण की प्रवृत्ति में तोड़ेदार बन्दूकों के महत्व को स्वीकार किया है। वहीं, इरफ़ान हबीब जैसे इतिहासकार घुड़सवार तीरंदाज़ों को मुग़ल युद्ध-प्रणाली का प्रमुख अंग मानते हैं।

8.3.8 सिंहावलोकन

मुग़ल राज्य की प्रकृति से संबंधित लगभग सभी सिद्धांत, साम्राज्य की नौकरशाही की संरचना तथा मज़बूत प्रभावी केन्द्रीयता के पहलू पर एकमत हैं। इन अध्ययनों ने क्षेत्रीय राजव्यवस्थाओं तथा राज्य-संस्थाओं के अध्ययन की कमी को पूरकता प्रदान की है। क्षेत्रीय राजव्यवस्थाओं के अध्ययन तथा ग्राम-समुदाय या मुग़लों के अधीन अपराध और दंड के नए पाठों का तात्पर्य यह नहीं है कि *मनसब* तथा *जागीर* जैसी प्रशासकीय संस्थाओं का कोई कम महत्व है। इसके बजाय ये उपमहाद्वीप में मुग़ल शासन की प्रकृति में विभिन्न कारकों, जैसे केंद्रीय सत्ता के प्राधिकार से दूरी और विभिन्न स्थानीय प्राधिकारियों द्वारा प्रयुक्त शक्ति, के महत्व को प्रकट करते हैं।

यहाँ यह समझना ज़रूरी है कि एक केंद्रीकृत राज्य द्वारा सभी क्षेत्रों में समान शक्ति और प्रभुत्व धारण करना अनिवार्य नहीं है। यह भी संभव है कि कोई क्षेत्रीय या विकेंद्रीकृत शक्ति अपनी क्षेत्रीय सीमाओं के भीतर बहुत मज़बूत शक्ति धारण करती हो, जबकि समानांतर रूप से एक केंद्रीय राज्य भी अस्तित्व में हो। इन अवधारणाओं का परीक्षण उपलब्ध *दस्तावेज़ों* के वस्तुपरक विश्लेषण पर आधारित होना चाहिए। इन सभी में केंद्रीकृत राज्य के सिद्धांत को इतिहासकारों के मध्य सबसे अधिक विश्वसनीय माना जाता है, जो *मनसब* तथा *जागीर* जैसी कुछ संस्थाओं के संबंध में समान मत रखते हैं। यद्यपि उस सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिवेश को समझना भी उतना ही महत्वपूर्ण है जिनमें मुग़ल राज्य मौजूद था तथा वे विभिन्न पद्धतियाँ भी जो मुगल शासन के अधीन स्थापित हुईं तथा जिन्होंने लोगों पर गहरा प्रभाव डाला।

इतिहासकारों के विभिन्न परिप्रेक्ष्यों या विशेषकर मुग़ल राज्य के इतिहासलेखन को उस समय-विशेष के संदर्भ में रखकर समझना चाहिए जब मुग़लों के अधीन राज्य के संबंध में कोई सिद्धांत-विशेष को

गढ़ा गया। किसी सिद्धांत में निहित वर्तमान के परिप्रेक्ष्य के तत्व को समझना भी ज़रूरी है। उदाहरण के लिए, राष्ट्रवादी अध्ययन, नव-मार्क्सवादी अध्ययन वर्तमान के कृत्यों या निर्णयों को न्यायसंगत साबित करने के लिए इतिहास पर नज़र डाल रहे थे। सही पद्धति उन साध्यों के उत्तर ख़ोजना होगी जिनके साधनों के माध्यम से किसी समय में सत्ताधारी स्वयं को न्यायसंगत दिर्शाते हैं। इसके अतिरिक्त मुग़ल राज्य को प्राच्य-निरंकुश या विभिन्न तत्वों के सम्मिश्रण के रूप में श्रेणीबद्ध किया जाना राज्य के किसी विशेष पहलू को देखने पर निर्भर करता है। किस पहलू का विश्लेषण किया जा रहा है, इस आधार पर राज्य को श्रेणीबद्ध किया जाता है। अतः आवश्यकता है कि मुग़ल राज्य को एक विशेष राजनीतिक संगठन के प्रकार के रूप में देखा जाए।

मुग़ल भारत मात्र मुस्लिम शासकों की दुनिया नहीं थी। जातियों व समुदायों के भीतर विभेदीकृत-पदसोपानिक तथा आर्थिक वर्गों को अलग नहीं रखा जा सकता है। मुग़ल साम्राज्य की केंद्रीकरण की प्रवृत्ति को मिश्रित संस्थाओं तथा व्यापक नीतियों के बिना नहीं समझा जा सकता है। इसकी अपेक्षा मुग़ल राज्य की प्रकृति को उस ही के ऐतिहासिक संदर्भ में देखना चाहिए। इसे एक इस्लामी राज्य या लोक-कल्याणकारी राज्य के रूप में नहीं देखा जा सकता है। ये पूर्ववर्ती शासनों की निरंतरता मात्र भी नहीं थी और न ही भारत में ब्रिटिश राज का पूर्व-रूप। इसका लोगों के आर्थिक तथा सामाजिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। इस प्रकार के साम्राज्य की प्रकृति को सहवर्ती पदसोपानक्रम तथा स्थापित परम्पराओं के द्वारा ही समझा जा सकता है। प्रत्येक उत्तरवर्ती बादशाह ने नए तत्वों को जोड़ा, वहीं बृहद प्रशासनिक ढाँचे को अखंड रखा गया। समय के साथ राजत्व का एक सिद्धांत विकसित हुआ, जिस पर अगली इकाई में विस्तार से चर्चा की जाएगी।

बोध प्रश्न-3

1) निम्नलिखित में से कौन भारत में मुग़ल राज्य के लिए 'गोला-बारूद साम्राज्य' के दृष्टिकोण का प्रतिपादक है?

   क) इरफ़ान हबीब

   ख) मोहिबुल हसन

   ग) इक़्तिदार आलम ख़ान

   घ) मार्शल जी.एस. हॉजसन

   ड.) उपर्युक्त में से कोई नहीं

2) मध्यकालीन भारत में मुग़ल शासन को संशोधनवादी इतिहासकार कैसे देखते हैं? परीक्षण कीजिए।

   ....

   ....

   ....

3) मुग़ल राज्य क्या एक धर्मतंत्रीय राज्य था? कारण बताइए।

   ....

   ....

   ....

8.4 सारांश

इस इकाई में, हमने मुग़ल राज्य की प्रकृति तथा चरित्र के संबंध में इतिहासकारों के विभिन्न समूहों द्वारा प्रतिपादित विभिन्न सिद्धांतों को समझने का प्रयत्न किया है। इस चर्चा के दौरान भारत में मुग़ल शासन के दौरान स्थापित अनेक संस्थाओं तथा उनके चरित्र की जानकारी प्रदान की गई है। इनमें से प्रत्येक सिद्धांत की मुख्य विशेषताएँ विस्तार से प्रदान की गई हैं। ये सिद्धांत तथा उनमें निहित तर्क का भी क्रमशः विवरण दिया गया है। इन सभी सिद्धांतों को समझने हेतु जिन कारकों को ध्यान में

रखना चाहिए, उनकी भी व्याख्या की गई है, इस प्रकार, इन विद्वत परम्पराओं की जटिलताओं को दर्शाया गया है। इसके अतिरिक्त, यह भी व्याख्या की गई है कि मुग़ल राज्य की प्रकृति का वर्णन करने वाले विभिन्न सिद्धांतों का विश्लेषण क्यों विभिन्न दृष्टिकोणों की बेहतर समझ तथा मुग़ल साम्राज्य में प्रचलित संस्थाओं तथा रीतियों के अध्ययन हेतु महत्वपूर्ण है। उस सांस्कृतिक तथा सामाजिक परिवेश को समझने के साथ, जिसमें मुग़ल राज्य मौजूद था, यह विश्लेषण हमें भारत में मुग़ल शासन के ऐतिहासिक तथा सामाजिक-राजनीतिक परिप्रेक्ष्य को समझने में भी सहायक होगा।

8.5 शब्दावली

बंदूकची	बंदूक़ चलाने वाले
बर्क़अंदाज़	घुड़सवार बंदूकचियों की टुकड़ी
गोला-बारूद साम्राज्य	ऐसा साम्राज्य जिसने आग्नेयशस्त्रों, ख़ासतौर पर तोपों, के बल पर भारी सैन्य सफलताएँ पाई हों। उदाहरणार्थ, मध्यकाल में ऑटोमन साम्राज्य, सफ़ावी साम्राज्य तथा मुग़ल साम्राज्य
इतिहासलेखन	किसी विषय-विशेष के संबंध में इतिहास सम्बन्धी लेखन का अध्ययन, उदाहरण के लिए, मुग़ल राज्य की प्रकृति का इतिहासलेखन
काशकंजिर	ऐसा मुलाज़िम या कार्मिक जो पन्द्रहवीं शताब्दी के भारत में आग्नेयशस्त्रों के विभाग में कार्यरत था। वह विस्फोटक पदार्थ / तोप के माध्यम से गोले फेंकता था
कज़ान	भारी तोपें
मआसिर-ए महमूदशाही	शिहाब हाकिम द्वारा फ़ारसी में रचित ऐतिहासिक रचना
निगाहदाश्त	गुज़ारा-भत्ता (उदाहरणार्थ, बंदूकचियों का)
प्राच्य निरंकुशतावाद	ऐसी विचारधारा जिसमें समाज को ध्रुवीय प्रणाली (polar apparatus) के रूप में देखा जाता है, इसका संबंध प्राच्य निरंकुशता के सिद्धांत से है। एक ध्रुव पर समृद्ध वर्ग स्थित होते हैं तो दूसरे पर साधारण जन – किसान तथा शिल्पकार
रियाज़-उल इंशा	महमूद गावाँ द्वारा गुलबर्गा के बहमनी शासकों पर रचित एक ऐतिहासिक ग्रंथ। यह फ़ारसी भाषा में महमूद गावाँ द्वारा लिखे गए पत्रों का संकलन है
शतुरनाल	ऊँट पर सवार सैनिकों द्वारा प्रयुक्त लंबी तोप
सबाल्टर्न अध्ययन	निचले स्तर से उच्च स्तर की ओर देखने का दृष्टिकोण जिसमें समाज के निम्न वर्गों पर अधिक बल दिया जाता है
धर्मतंत्र/धर्मतंत्रीय राज्य	ऐसा शासन जहाँ पुरोहित वर्ग ईश्वर के नाम पर शासन करता है। या एक ऐसा राज्य जो एक प्रभुत्वशाली धर्म के आधार पर शासन करता है तथा अन्य धर्मावलम्बियों को अपने धर्म के पालन की अनुमति नहीं होती है
तोपा/कंडा	मुस्लिम/कश्मीरी बोली में तोप
वतन	वह क्षेत्र जो पैतृक रूप से आधिपत्य में हो; वंशानुगत

	राजस्व मुक्त भू-अनुदान
वकाय नवीस	ख़बरें दर्ज़ करने वाले
ज़र्ब-ज़ान	हल्की तोपें या *कज़ान* की छोटी प्रतिकृति

8.6 बोध प्रश्नों का उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) भाग 8.1 देखें। आपके उत्तर में निम्नलिखित बिन्दु शामिल होने चाहिएः
   क) मुग़ल राज्य के संबंध में साम्राज्यवादी दृष्टिकोण
   ख) मुग़ल राज्य के अध्ययन के संबंध में राष्ट्रवादी दृष्टिकोण
   ग) कैम्ब्रिज स्कूल
   घ) सबाल्टर्न अध्ययन
2) भाग 8.1 देखें। आपके उत्तर में निम्नलिखित बिन्दु शामिल होने चाहिएः
   क) साम्राज्यवादी इतिहासकारों द्वारा मुग़ल राज्य की प्रकृति के संबंध में दिए गए विभिन्न तर्क
   ख) उनके तर्कों के पीछे के कारण
3) देखें भाग 8.1 आपके उत्तर में निम्नलिखित बिन्दु शामिल होने चाहिएः
   क) मुग़ल राज्य के इतिहासलेखन में मार्क्सवादी प्रभाव कब शुरू हुआ
   ख) मुग़ल राज्य के संबंध में सबाल्टर्न अध्ययन के विद्वानों द्वारा किन नए पहलुओं का विश्लेषण किया है?
   ग) ये पहलू किस प्रकार मार्क्सवादी विचारधारा से भिन्न हैं ?
4) क) इरफ़ान हबीब
5) घ) राज्य शासन का एकमात्र अभिकर्ता (एजेंसी)
6) भाग 8.2 देखें। अध्ययन के नए क्षेत्रों के अतिरिक्त, राजनीतिक विचारधारा, राजनीतिक-अर्थव्यवस्था, विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी शोधकर्ताओं का ध्यान आकर्षित करना जारी रखे हैं।

बोध प्रश्न-2

1) उप-भाग 8.3.1 देखें। आपके उत्तर में निम्नलिखित बिन्दु शामिल होने चाहिएः
   क) इस तर्क की मुख्य विशेषताएँ
   ख) इतिहासकार, जिन्होंने इस तर्क का समर्थन किया है
   ग) कुछ इतिहासकारों द्वारा इस सिद्धांत की आलोचना क्यों की गई है?
2) उप-भाग 8.3.2 और उप-भाग 8.3.3 देखें। मुग़ल राज्य की प्रकृति को समझने के लिए इतिहासकारों द्वारा प्रतिपादित केंद्रीकृत राज्य तथा खंडीय राज्य के सिद्धांत के प्रमुख बिंदुओं की तुलना कीजिए।
3) उप-भाग 8.3.4 देखें। आपके उत्तर में निम्नलिखित बिन्दु शामिल होने चाहिएः
   क) मुग़ल राज्य के पितृसत्तात्मक सिद्धांत का प्रेरणा-स्रोत
   ख) मुग़ल राज्य की पितृसत्तात्मक-नौकरशाही प्रकृति की प्रमुख विशेषताएँ

बोध प्रश्न-3

1) घ) मार्शल जी. एस. हॉजसन
2) उप-भाग 8.3.5 देखें। आपके उत्तर में सी.ए. बेली, फ्रैंक पर्लिन, मुज़फ़्फ़र आलम तथा फ़रहत हसन द्वारा हाल में किए गए अध्ययन शामिल होने चाहिए।

3) उप-भाग 8.3.6 देखें। आपके उत्तर में मुग़ल राज्य की प्रकृति के संबंध में इस तर्क के आधार और उपयुक्तता का उल्लेख होना चाहिए।

8.7 संदर्भ ग्रंथ

आलम, मुज़फ़्फ़र एवं संजय सुब्रह्मण्यम, (संपा.) (1998) द *मुग़ल स्टेट, 1526-1750* (नई दिल्लीः ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

अली, एम. अतहर, (1993) 'द मुग़ल पॉलिटी – अ क्रिटीक ऑफ़ रिवीज़निस्ट एप्रोचेज़', *मॉडर्न एशियन स्टडीज,* भाग 27, नं. 4, अक्टूबर.

बेली, सी. ए., (1983) *रूलर्ज़, टाउनसमेन एंड बाज़ार्सः नॉर्थ इंडियन सोसायटी इन द एज ऑफ़ ब्रिटिश एक्सपैन्श, 1770-1870* (कैम्ब्रिजः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस).

ब्लेक, स्टीफ़न पी., (1979) 'द पैट्रीमोनियल-ब्यूरोक्रेटिक एम्पायर ऑफ़ द मुग़ल्ज', द *जर्नल ऑफ़ एशियन स्टडीज,* भाग 39, न. 1, नवंबर.

हबीब, इरफ़ान, (1963) *द एग्रेरियन सिस्टम ऑफ़ मुग़ल इंडिया, 1556-1707* (नई दिल्लीः ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस), संशोधित, 1999.

हसन, फ़रहत, (2004) *स्टेट एंड लोकैलिटी इन मुग़ल इंडियाः पावर रिलेशंस इन वेस्टर्न इंडिया, c.1572-1730* (कैम्ब्रिजः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस).

ख़ान, इक़्तिदार, आलम (2009) 'ट्रेसिंग सोर्सेज़ ऑफ़ प्रिंसिपल्स ऑफ़ मुग़ल गवर्नेंसः अ क्रिटीक ऑफ़ रीसेंट हिस्टोरियोग्राफ़ी', *सोशल साइंटिस्ट,* भाग 37, नं. 5-6, मई-जून.

ख़ान, इक़्तिदार, आलम, (2005) 'गनपाउडर एंड एम्पायरः ऐन इंडियन केस', *सोशल साइंटिस्ट,* भाग 33, नं. 3-4, मार्च-अप्रैल.

ख़ान, इक़्तिदार, आलम, (2001) 'स्टेट इन द मुग़ल इंडियाः रिएक्जामिनिंग द मिथ्स ऑफ़ ए काउंटर-विज़न', *सोशल साइंटिस्ट,* भाग 29, नं. 1-2, जनवरी-फ़रवरी.

मलिक, ज़ेड. यू., (2014) 'द कोर एंड द पेरिफरीः अ कॉन्ट्रिब्यूशन टू द डिबेट ऑन द एटींथ सेंचुरी', निर्मल कुमार (संपा.), *हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया 1600-1800* (नई दिल्लीः रिसर्च इंडिया प्रेस).

मूसवी, शीरीन, (2005) 'द प्री-कॉलेनियल स्टेट', *सोशल साइंटिस्ट,* भाग 33, नं. 3-4, मार्च-अप्रैल

मुखिया, हरबंस, (2004) 'फ़ॉर कांक्वेस्ट एंड गवरनेंसः लेज़िटिमेसी, रिलीजन एंड पॉलिटिकल कल्चर', *द मुग़ल्स ऑफ़ इंडिया* (नई दिल्लीः ब्लैकवेल प्रकाशन).

राशिद, अब्दुर, (1961) 'द ट्रीटमेंट ऑफ़ हिस्ट्री बाई मुस्लिम हिस्टॉरियन्स़ इन मुग़ल आफ़िशियल एंड बायोग्राफ़िकल वर्क्स', सी. एच. फ़िलिप्स, संपा. *हिस्टॉरियन्स ऑफ़ इंडिया, पाकिस्तान एंड सीलोन* (लंदनः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

रिचर्ड्स, जे. एफ़., (1996) द *मुग़ल एम्पायर* (कैम्ब्रिजः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस).

स्त्रूसैंड, डगलस ई., (1989) द *फ़ॉर्मेशन ऑफ़ मुग़ल एम्पायर* (ऑक्सफ़ोर्डः ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

8.8 शैक्षणिक वीडियो ऑक्सफ़ोर्ड

इंटरव्यू विद प्रो. इरफान हबीब ऑन द थीम हिस्ट्री एंड हिस्टॉरियोग्राफी
https://www.youtube.com/
watch?v=7zoJppZCEt8&list=PLwUYIeLOKZ8SgFJH6sAPhRjmokkdAFJHm

हरबस मुखिया ऑन मुगल हिस्ट्री एंड हिस्टॉरियोग्राफी
https://www.youtube.com/watch?v=XnCwjbeYtrA

इकाई 9 राजत्व की अवधारणा*

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 समकालीन विश्व में राजनीतिक संस्थाएँ: ईरान, मध्य एशिया तथा ऑटोमन साम्राज्य

9.3 मुग़लों की तुर्क-मंगोल विरासत

9.3.1 मंगोल विरासत

9.3.2 तुर्क विरासत

9.4 राजत्व का मुग़ल सिद्धांत

9.4.1 बाबर

9.4.2 हुमायूँ

9.4.3 अकबर

9.5 मुग़ल साम्राज्यिक सत्ता का निर्माण

9.6 सारांश

9.7 शब्दावली

9.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.9 संदर्भ ग्रंथ

9.10 शैक्षणिक वीडियो

9.0 उद्देश्य

इकाई 8 में, मुग़ल राज्य की प्रकृति के संबंध में विभिन्न दृष्टिकोणों की चर्चा की गई है। मुग़ल राज्य के चरित्र-निरूपण तथा श्रेणीकरण के प्रश्नों से आगे बढ़ते हुए यह इकाई मुग़ल साम्राज्य के निर्माणकारी चरण के विषय में और इसके संचालन की विभिन्न विधाओं तथा शासन व्यवस्था के संबंध में हमारी समझ को बढ़ाएगी। इस इकाई में मुग़लों की राजनीतिक विचारधारा और उनकी संप्रभुता के सिद्धांत पर विविध प्रभावों की चर्चा की गई है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:

- मुग़ल राज्य के विकास-क्रम और प्रकृति को समझ पाएँगे,
- मुग़लों के अधीन राजनीतिक विचार और उनके संप्रभुता के सिद्धांत के निर्माणकारी कारकों, और उस पर विभिन्न प्रभावों को समझ पाएँगे,
- मुग़लों की मध्य एशियाई विरासत तथा राजनीतिक ढाँचे के बारे में सीखेंगे,
- मुग़ल राज्य की कार्य-प्रणाली में विभिन्न प्रभावों के स्वरूपों का विश्लेषण कर पाएँगे,
- यह जान पाएँगे कि किस प्रकार मुग़ल स्वयं को तुर्क-मंगोल विरासत का उत्तराधिकारी समझते थे,
- मुग़लों द्वारा किए गए संप्रभु-दर्ज़े के दावे के आधार को समझ पाएँगे, और
- भारत में मुग़लों के राजत्व के सिद्धांत का परीक्षण कर पाएँगे।

* डॉ. दिव्या सेठी, सेंटर फार हिस्टॉरिकल स्टडीज़, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

9.1 प्रस्तावना

मुग़ल राज्य की चारित्रिक विशेषताएँ निर्धारित करने के प्रश्नों, जिनकी पिछली इकाई में चर्चा की गई थी, से आगे बढ़ते हुए यहाँ हम राजत्व के सिद्धांतों तथा साम्राज्य के प्रशासन तथा कार्य-पद्धति की चर्चा करेंगे। इस इकाई की चर्चा में उन विभिन्न पद्धतियों पर रोशनी डालना दिलचस्प रहेगा जिनके माध्यम से मुग़ल शासकों ने अपने कृत्यों और निर्णयों को परिभाषित किया और न्यायसंगत ठहराया। राजत्व के सिद्धांत का तात्पर्य, शाब्दिक रूप से, उन सिद्धांतों से है जिनके ऊपर शासन का राजकीय और राजनीतिक औचित्य टिका हुआ होता था। ये सिद्धांत किसी दिए गए ऐतिहासिक संदर्भ में संप्रभु के ओहदे को स्थापित करते हैं।

जैसा कि दिल्ली सल्तनत से संबंधित पिछले पाठ्यक्रम में अध्ययन किया गया था, आप मंगोल आक्रमणों के प्रसंग में बलबन द्वारा प्रतिपादित राजत्व के सिद्धांत से अवश्य ही परिचित होंगे। उसके राजत्व के सिद्धांत ने इस प्रकार की चुनौतियों के सम्मुख सुल्तान के ओहदे की प्रतिष्ठा को ऊँचा उठाया। इसी प्रकार, मुग़ल शासन के अधीन राजत्व के सिद्धांतों को अमल में लाया गया ताकि प्रजा पर प्रभावी ढंग से शासन किया जा सके तथा संप्रभु की प्रतिष्ठा को उठाया जा सके। इन दोनों को जो तथ्य अलग करता है, वह है मुग़ल राज्य के संबंध में विपुल मात्रा में रचा गया इतिहासलेखन। यह इतिहासलेखन शुरुआती तौर पर पक्षपातपूर्ण ब्रिटिश लेखन और इन लेखनों के प्रति राष्ट्रवादी प्रतिक्रिया का परिणाम था। केवल इस साम्राज्य की संस्थाओं को तार्किक रूप से प्रमुख रूप से समझ कर ही हम मुग़ल राज्य के राजत्व के सिद्धांत को ग्रहण करने में समर्थ हो पाएँगे।

शासन की वैधानिकता या उसके औचित्य का अध्ययन एक नया चलन है। मुग़ल राज्य की वैधानिकता मुग़ल बादशाहों द्वारा सत्ता पर नियंत्रण के पतन हो जाने के बाद भी काफी समय तक बनी रही। मुग़लों की स्मृति आज तक बनी हुई है, उनकी विरासत समाज के विभिन्न वर्गों के बीच चिंतन और वाद-विवाद का विषय बनी हुई है। मध्यकाल में जिस तरह राज्य-निर्माण की प्रक्रिया का विश्लेषण किया जाता है, उसे आवश्यक रूप से वंशगत मूल्यांकन तक सीमित रखने की ज़रूरत नहीं है। और न हीं, संस्थात्मक विरासत तथा कार्य-पद्धति की निरंतरता का तात्पर्य परिवर्तन-हीनता से ही निकालना आवश्यक है। प्रत्येक उत्तरकालिक शासन, चाहे उसकी स्थापना परंपरा से हो या विजय से, समाज के बीच स्थापित होने में समय लेता है। यह तत्काल ही मौजूदा या पूर्व-प्रचलित प्रशासन की व्यवस्था का स्थान नहीं ले लेता है। अपितु, नई व्यवस्था द्वारा पहले की सशक्त व्यवस्था को बनाए रखा जाता है। नई व्यवस्था समय के साथ-साथ क्रमिक रूप से विकसित होती है। सभी क्षेत्रों के इतिहास में अधिक्षेत्रीय राजव्यवस्थाओं के लिए यह तथ्य सत्यता रखता है।

ज़हीरुद्दीन मुहम्मद बाबर द्वारा उत्तर भारत में 1520 के दशक में स्थापित मुग़ल साम्राज्य ने भारतीय राजनीतिक विचार तथा फ़ारसी व तुर्क-मंगोल परम्पराओं के अनुरूप संप्रभुता की संस्था को विशिष्ट महत्व प्रदान किया। इस प्रकार, मुग़ल साम्राज्य को व्यापक संदर्भ में रखते हुए, जिसमें मध्य एशिया भी शामिल है, शासकों को यथा-योग्य स्थान पर रखते हुए देखना महत्वपूर्ण हो जाता है। इस व्यापक परिप्रेक्ष्य में, पड़ोसी राज्यों, ईरान में 1501 से लगभग 1720 तक शासन करने वाले सफ़ावी, 1300 से 1923 तक तुर्की में शासन करने वाले ऑटोमन तथा 1526 से 1857 तक भारत के तख्त पर विराजमान स्वयं मुग़ल भी शामिल हैं।

9.2 समकालीन विश्व में राजनीतिक संस्थाएँ: ईरान, मध्य एशिया तथा ऑटोमन साम्राज्य

समरक़ंद के एकमात्र शाही दरबार के राजनीतिक प्रभुत्व के विपरीत मध्यकालीन इस्लामी जीवन कई राजनीतिक केंद्रों तथा दरबारों का गवाह रहा था। इस काल के विकासक्रमों के फलस्वरूप कुछ विशेष सामाजिक-आर्थिक संस्थाओं का विकास हुआ। पंद्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में, मध्य एशिया के राजनीतिक परिवेश में परस्पर घातक संघर्ष जारी थे। इसके परिणामस्वरूप उस तुर्क-मंगोल सिद्धांत का फिर से आविर्भाव हुआ जिसके मुताबिक़ सत्ताधारी वंश का प्रत्येक पुरुष सदस्य राजनीतिक संप्रभुता का दावा कर सकता था।

मध्य एशिया के सोलहवीं शताब्दी के इतिहास में सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटनाओं में से एक तुर्क तथा मंगोल राजनीतिक परम्पराओं का सुदृढ़ीकरण था, जैसे, सेना को संगठित करना, राजनीतिक प्रशासन को व्यवस्थागत रूप देना, केंद्रीय रूप से संगठित संस्थान तथा प्रभावी सांस्कृतिक परम्पराएँ, जिन्होंने शासन की अन्य व्यवस्थाओं पर अपना प्रभाव छोड़ा, विशेषकर मुग़लों पर। तुर्क-मंगोल साम्राज्यिक परम्पराओं से मुग़लों के संबंध को समझे बिना भारत के क्षेत्रीय विस्तार में मुग़लों द्वारा प्रयुक्त शासन के सिद्धांत को समझ पाना मुश्किल होगा।

तैमूर और उसके उत्तराधिकारियों ने मध्य एशिया की राजनीतिक स्थिति के अनुकूल तुर्क-मंगोल तथा इस्लामी परम्पराओं के बीच संतुलन क़ायम किया। तैमूर के विपरीत, उसके उत्तराधिकारी लूट के माल में सैन्य अभिजात्यों की हिस्सेदारी का वादा क़ायम नहीं रख सके। अतः इस क्षेत्र में *सुयूरग़ाल* अर्थात् राजस्व-मुक्त उत्पादक भूमि और अन्य कर-विमुक्त अनुदान के तरीके, जैसे संस्थागत उपायों का विकास हुआ। *सुयूरग़ाल* धारण करने वाला केंद्रीय सरकार के किसी भी प्रकार के प्रशासनिक और न्यायिक हस्तक्षेप से मुक्त था। इसके धारक को होने वाले लाभ पुरानी *इक़्ता* व्यवस्था में होने वाले लाभों से कई अधिक थे। इसमें सैन्य टुकड़ियाँ उपलब्ध कराने का कोई अनिवार्य दायित्व भी नहीं था। *सुयूरग़ाल* मध्य एशिया तथा ईरान में भू-धारिता का प्रमुख रूप बन गई।

सोलहवीं शताब्दी के दौरान, *सुयूरग़ाल* प्रदान किए जाते रहे किंतु कम मात्रा में तथा सफ़ावियों के अधीन इसका स्थान कम उदार *तियूल* ने ले लिया। इसके साथ ही अन्य कर-विमुक्तियाँ प्रदान की जाती रहीं ताकि शासन के लिए समर्थन जुटाया जा सके। मंगोलों तथा उनके उत्तराधिकारी राज्यों के अधीन एक अन्य संस्था *तरख़ानी* थी। कर-विमुक्तियों के अतिरिक्त इसमें व्यक्तियों को विशिष्ट सैन्य सेवाओं के बदले कई तरह के विशेषाधिकार मिलते थे। सोलहवीं शताब्दी तक, सफ़ावी तथा उज़्बेकों के अधीन *तरख़ानी* विशेषाधिकार धर्मगुरुओं और *उलमा* से संबंधित हो गए थे तथा कभी-कभी प्रमुख व्यापारियों को भी दिए जाने लगे थे।

विशेषाधिकारों की ऐसी व्यवस्था का अर्थ था, कराधान के क्षेत्र में मनमानेपन के अलावा केंद्रीय सरकार के लिए राजस्व की हानि और सत्ता का विखंडन। इसने संरक्षण के सामाजिक आधार को भी विस्तृत किया। संरक्षण प्रदान करने की गतिविधियाँ – स्मारकीय वास्तुकला, लघुचित्रकला, ग्रंथों की रचना तथा अन्य – राजनीतिक मंतव्य तथा वैधानिकता की चाह से स्वतंत्र न थीं। राजनीतिक रूप से गतिशील ये उपाय इस क्षेत्र में कलात्मक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों में असीम वृद्धि के रूप में परिणित हुईं।

उत्तराधिकार की चंगेज़ी-तिमूरी परम्परा के मुताबिक़ शहज़ादों को शासन तथा प्रशासन सीखने के लिए ***सूबा-ए-गुज़ारा-ए शहज़ादा*** (**appanages**) तथा अन्य क्षेत्र प्रदान किए जाते थे। उत्तराधिकार की चंगेज़ी-तिमूरी परम्परा के सिद्धांत में अंतर्निहित कमज़ोरियों के कारण सफ़ावी तथा ऑटोमन शासकों ने धीरे-धीरे इसमें परिवर्तन किए। सुल्तान मुराद प्रथम (1360-1389) के शासनकाल से मध्य सत्रहवीं शताब्दी तक ऑटोमन शहज़ादे गद्दी पर बैठने के बाद सभी सम्भावित प्रतिस्पर्धियों की हत्या कर देते थे। मध्य-सोलहवीं शताब्दी से सफ़ावी शहज़ादों को कोई राजनीतिक *गुज़ारा-ए शहज़ादा-सूबा* नहीं दिया गया तथा उन्हें राजपरिवार तक ही सीमित रखा गया, इस तरह उत्तराधिकार के संघर्षों को केवल शाही महल के भीतर तक ही सीमित कर दिया गया। मुग़लों के विपरीत ऑटोमन शासकों ने रूढ़िवादी इस्लामी विधिवाद के जानकारों/विद्वानों में दिलचस्पी दिखाई। मुग़ल *उलमा* से इस तरह के संबंध साझा नहीं करते थे।

सफ़ावी शासक शाह इस्माइल (1501-1524), जो इस वंश का संस्थापक था, ने स्वयं को अली, सिकंदर तथा जीसस की मिली-जुली छवि के रूप में पेश किया। इस वंश के बाद के शासकों ने इस भारी-भरकम भूमिका से स्वयं को दूर ले जाने के लिए संघर्ष किया। बादशाह शाह अब्बास प्रथम (1588-1629) के समय में इस छवि में बदलाव लाया गया। उसने तुर्कमान जनजाति के अनुयायियों के लिए ***पीर-ओ मुर्शिद*** होने से स्वयं को दूर कर लिया तथा *उलमा* के साथ घनिष्ठ संबंध रखे। वहीं शासन में सर्वोच्च ओहदे पर नादिरशाह के उदय के साथ राजस्व संग्रहण की व्यवस्था के संदर्भ में राज्य अत्यधिक केंद्रीकृत बन गया था। सफ़ावी राज्य में, संप्रभु शासक तथा *उमरा* (अधिकारियों) के बीच संबंध मुग़ल राज्य के समान ही थे।

यह विशेष ध्यान में रखना चाहिए कि ऑटोमन साम्राज्य ने भी क्षेत्रीय केंद्रीकरण का अनुभव किया जैसा कि मुग़लक़ालीन भारत में भी किया गया था। साम्राज्य के आख़िरी दौर में, सामाजिक परिवर्तनों और पुनर्व्यवस्थापन, जैसे *इल्तिज़ाम* – ठेके पर राजस्व वसूली– जैसी संस्था के माध्यम से निम्नतर समूहों द्वारा महत्व प्राप्त किया गया। इस संस्था की मुग़ल भारत में मौजूद *इज़ारा* व्यवस्था से काफ़ी समानता है। समकालीन ऑटोमन शासकों ने भू-परिदृश्यात्मक वास्तु के बजाय धार्मिक वास्तु का निर्माण करवाया। सांस्कृतिक संरक्षण के क्षेत्र में, ऑटोमन, उज़बेक़ों तथा सफ़ाविदों द्वारा कलात्मक संरक्षण को सर्वाधिक महत्वपूर्ण तिमूरी विरासत माना जाता था।

मुराद चतुर्थ (1623-1640) के दरबार में, यह मशवरा दिया गया था कि कलाकारों को संरक्षण देने में हेरात के हुसैन बैक़रा के दरबार का अनुकरण किया जाना चाहिए। मुग़ल दरबार, धार्मिक सहिष्णुता के काल में, संरक्षण प्रदान करने में निरंतरता के कारण ईरान तथा मध्य एशिया से पलायन किए हुए लोगों के लिए शरणस्थली के रूप में उभरा। मध्य एशिया के इन कलावंतों की दरबार में काफ़ी माँग थी। इस तरह के कलात्मक तथा साहित्यिक पल्लवन का कुछ विद्वानों द्वारा 'भारत में तिमूरी पुनर्जागरण' के रूप में वर्णन किया गया है।

बोध प्रश्न-1

1) मुग़ल साम्राज्य के पड़ोसी राज्यों के नाम बताइए। साथ ही किसी ऐसी संस्था *के बारे* में भी बताइए जो इस समस्त क्षेत्र के राज्यों में व्याप्त थी, यद्यपि प्रत्येक में कुछेक भिन्नता लिए हुए।

....

....

....

2) मुग़ल साम्राज्य की स्थापना के समय मध्यकालीन इस्लामी दुनिया की व्याख्या कीजिए।

....

....

....

3) उत्तराधिकार की चंगेज़ी-तिमूरी परम्परा के सिद्धांत किस प्रकार ऑटोमन तथा सफ़ावी शासकों के अधीन परिवर्तित हुए? व्याख्या कीजिए।

....

....

....

4) निम्नलिखित सफ़ावी शासकों में कौन *उलमा* से घनिष्ठ संबंध रखता था?

   क) शाह अब्बास प्रथम

   ख) शाह इस्माइल

   ग) नादिरशाह

   घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

5) निम्नलिखित में से कौन सी संस्था/संस्थाओं की मुग़ल भारत में मौजूद *इज़ारा* व्यवस्था के साथ समरूपता थी?

   क) *पीर-ओ मुर्शिद*

   ख) *सुयूरग़ाल*

   ग) *इल्तिज़ाम*

   घ) *तरख़ानी*

   ड.) उपर्युक्त सभी

6) ऑटोमन साम्राज्य तथा ईरान व मध्य एशिया में क्रमशः सफ़ावी तथा उज़बेकों के अधीन सांस्कृतिक संरक्षण किस स्थिति में था?

....

....

....

....

....

9.3 मुग़लों की तुर्क-मंगोल विरासत

इस भाग में आपका परिचय संप्रभुता की मंगोल परम्परा, विशेषकर चंगेज़ी *तुरा,* से कराया जाएगा। हम यह भी चर्चा करेंगे कि संप्रभुता की तुर्क परंपरा क्या थी और किस तरह से यह मंगोल परम्परा से भिन्न थी।

9.3.1 मंगोल विरासत

सोलहवीं शताब्दी में, केंद्रीय इस्लामी क्षेत्रों में बिखरी हुई छोटी-छोटी सल्तनतों की जगह शक्तिशाली मुस्लिम साम्राज्यों का उदय होने लगा था। मंगोल आकांक्षाओं तथा मध्य एशियाई तुर्क राजनीतिक परम्पराओं को साझा करने वाले ऑटोमन, सफ़ावी, उज़बेक तथा मुग़ल साम्राज्य थे। कुषाण जैसे प्राचीन समय के वंश, जो मध्य एशिया के संसार में फैले हुए थे, तथा दिल्ली सल्तनत, जिनमें से कई शासक मूलतः मध्य एशिया से ही संबंध रखते थे, इस क्षेत्र में अपनी क्षेत्रीय महत्वाकांक्षाओं को अनुरक्षित नहीं रख सके थे। मुग़ल साम्राज्य में यह स्थिति बिल्कुल भिन्न थी।

प्राक्-आधुनिक इतिहास में, मंगोलों ने तेरहवीं शताब्दी में स्टेपी क्षेत्र से बाहर निकलकर एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की। मुग़ल बादशाहों द्वारा विद्वानों, धर्मविदों तथा अन्य को *सुयूरग़ालों* का अनुदान, विशेषकर शाहजहाँ के काल में, एक मंगोल परम्परा थी। *फ़िक़* या इस्लामी न्यायशास्त्र, जिस पर तिमूरिद अत्यधिक निर्भर थे, *फ़तवा-ए आलमगीरी* के लेखन को शुरू करने का आधार था। यह उपमहाद्वीप में औपनिवेशिक काल में भी इस्लामी क़ानून के आधार के रूप में काम करती रही। मुग़ल इसके साथ ही चंगेज़ी-तिमूरी तथा मावराउन्नहर (टाँसऑक्सियाना) की नक़्शबंदी सूफ़ी परम्परा के बीच ऐतिहासिक संबंध को बढ़ावा देने के प्रति भी सचेत रहे। नक़्शबंदियों को कई मौक़ों पर मुग़ल दरबार में परम्परागत अभिवादन के प्रदर्शन से भी छूट दी गई थी।

मध्य एशिया की बात करें तो चंगेज़ ख़ान के इस क्षेत्र में उदय के बाद, तुर्क संस्कृति जीवन के सभी आयामों में प्रबल हो गई थी। और तैमूर का साम्राज्य तुर्क-मंगोल प्रशासनिक तथा सैन्य व्यवस्था का मिश्रण था। तुर्क संस्कृति के वर्चस्व के साथ ही मध्य एशियाई प्रशासन, कुछ ख़ास राजनीतिक सिद्धांतों तथा सरकार व प्रशासन के संगठन के स्वरूपों से भी प्रभावित था, जिन्हें *तुरा* या *यासा* के रूप में जाना जाता था। इन अचल क़ानूनों से कोई भी विचलन एक अपराध माना जाता था। इसके अलावा, मंगोल क़ानूनों – चंगेज़ ख़ान का *तुरा* या *यासा* – का नियमित तौर पर हवाला दिया जाता था जो मोटे तौर पर प्राचीन मंगोल रीतियों का प्रतिनिधित्व करते थे।

साम्राज्य के राजनीतिक दर्शन में *अख़लाक़ी* अभिनियमों को ग्रहण करने की निरंतरता में भी तैमूरिदों तथा मुग़लों के बीच उच्च कोटि की निरंतरता प्रदर्शित होती है। धर्म एक अन्य प्रमुख तत्व था जिसने इन साम्राज्यों के राजत्व के लिए उपयुक्त आदर्श प्रस्तुत किया था। मुग़ल बादशाहों द्वारा अपने संस्मरणों में स्वयं की छवि श्रेष्ठ संप्रभु या श्रेष्ठ मानव के रूप में गढ़ते हुए भी वैधानिकता प्राप्त की गई। यह मॉडल भी उनके पूर्वजों की विरासत से प्रेरित था। मावराउन्नहर में एक श्रेष्ठ मानव वह माना जाता था जो 'ईरानी रंग-ढंग का हो, इस्लाम का अनुकरण करने वाला तुर्क-मंगोल अमीर तथा एक सुसंस्कृत मनुष्य' हो।

चंगेज़ ख़ान की *तुरा/यासा*

विशाल भू-भाग पर मंगोलों द्वारा स्थापित नियंत्रण मानव इतिहास में विशिष्ट समझा जाता है। *तुरा* का तात्पर्य मंगोल साम्राज्य के संस्थापक चंगेज़ ख़ान द्वारा मंगोलों के क़ानूनों तथा उनके पूर्वजों की परम्परा को संहिताबद्ध किए जाने से है। यह कानून उसके वंशजों के लिए बाध्यकारी थे। *यासा* या इस संहिताबद्ध क़ानून की प्रतिलिपियाँ मंगोल राजकुमारों द्वारा सुरक्षित रखी गई थीं और समय-समय पर मशवरे के लिए उनका उपयोग किया जाता था। इस संहिता के विभिन्न भागों को सावधानीपूर्वक एकीकृत करने के प्रयास किए गए हैं तथा मुस्लिम इतिहासकारों ने इस प्रकार की संहिता के मौजूद होने को लेकर वाद-विवाद किए हैं।

इनमें से कुछ क़ानून अति प्राचीन काल से तुर्क-मंगोल प्रथाओं के रूप में मौजूद थे। प्राचीन परम्पराओं के प्रति ऐसी निष्ठा संप्रभुता की मंगोल संकल्पना में निर्विवाद समर्पण के तत्व में प्रदर्शित होती थी। दैवीय राजत्व की संकल्पना को इन क़ानूनों ने और भी बल प्रदान किया।

मुग़ल बादशाह अपने तुर्क-मंगोल संबंध पर गर्व महसूस करते थे। बाबर ने *बाबरनामा* में उल्लेख किया है, कि 'जिस तरह चंगेज़ ख़ान ने इन नियमों को बनाया था वैसे ही मुग़ल उनका अनुसरण करते हैं।' उसने चंगेज़ ख़ान द्वारा स्थापित सैन्य अभिनियमों का विस्तृत विवरण दिया है, जो उसके शासनकाल तक जारी थे। इन परम्पराओं का उत्कृष्ट मेल अकबर के अधीन प्रशासन के विभिन्न क्षेत्रों में देखने को मिलता है। *तुरा/यासा* मुग़ल साम्राज्य के आनुष्ठानिक दायरे में लम्बे समय तक बनी रही। *तुरा* का ज़िक्र *तुज़ुक-ए जहाँगीरी* में भी मिलता है। बादशाह शाहजहाँ के समय में इसका संदर्भ फ़ीका पड़ने लगा था।

9.3.2 तुर्क विरासत

भारत में मुग़ल गर्व से अपनी पूर्वज-परम्परा को चंगेज़ तथा तैमूर, दोनों, से जोड़ते थे। *बाबरनामा* में, बाबर चंगेज़ का अपनी माता के पूर्वज के रूप में और तैमूर का अपने पैतृक पूर्वज के रूप में उल्लेख करता है। बाबर के मुताबिक़ उसने हिंदुस्तान को इसलिए जीता क्योंकि यह उसके पूर्वज, एक तुर्क, से संबंध रखता था। प्रख्यात दरबारी इतिहासकार अबुल फ़ज़ल मुग़लों की पारलौकिक पूर्वज-परंपरा को मध्य एशियाई व्यक्तित्व अलंकुवा तक ले जाता है जो चंगेज़ी मातृदेवी थीं। भारत में मुग़ल राजव्यवस्था के निर्माणकारी तत्वों की समझ क़ायम करने के लिए तिमूरिद परम्परा का अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण है।

चौदहवीं तथा पंद्रहवीं शताब्दी के दौरान, इस्लामी मज़हब ने मध्य एशिया में स्वयं को पुनः मज़बूत किया था तथा कई विद्वान *आलिमों* ने *तुरा* के पक्ष में निर्णय दिया था। पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक तिमूरिद शासक रूढ़िवादी धार्मिक विचारों की ओर मुड़ चुके थे। लेकिन इसने *तुरा* की लोकप्रियता को समाप्त नहीं किया। *शरिया* तथा *तुरा* दोनों के तत्व तिमूरिद शासन के दौरान सह-अस्तित्व में बने रहे। बादशाह बाबर का मत था कि 'हमारे पूर्वज... चंगेज़-*तुरा* का सम्मान करते थे... यद्यपि इसका कोई दैवीय प्राधिकार नहीं था।' अकबर के अधीन राजव्यवस्था में मध्य एशियाई तथा भारतीय परम्पराओं का मिश्रण देखा जा सकता है। *तुरा* का उल्लेख जहाँगीर की आत्मकथा में भी आता है तथा उसके द्वारा उठाए गए कुछ क़दमों में भी नज़र आता है। *तुरा* के संदर्भ शाहजहाँ के शासनकाल से कम होने लगते हैं तथा औरंगज़ेब के काल में दिखाई ही नहीं पड़ते हैं।

चंगेज़ द्वारा संप्रभुता का दैवीय सिद्धांत अभिधारित किया गया था जिसका यह विश्वास था, जैसा कि एक मंगोल ख़ान ने कहा है, 'आकाश में केवल एक सूर्य या एक चंद्रमा हो सकता है; तो धरती पर दो स्वामी कैसे हो सकते हैं।' तैमूर ने संप्रभुता के इसी सिद्धांत पर विश्वास करना जारी रखा था और उसने कहा है कि 'चूँकि ख़ुदा एक है, अतः धरती पर ख़ुदा का प्रतिनिधि भी एक ही होना चाहिए'। बाबर भी इसी सिद्धांत को आगे ले जाने की पुष्टि करता है जब वह *बाबरनामा* में उल्लेख करता है कि, 'दस दरवेश एक कम्बल के नीचे सोते हैं; एक ही आबो-हवा में दो राजाओं के लिए कोई जगह नहीं होती है।' इतिहासकारों के बीच इस पर तर्क होता रहा है कि मंगोलों में निरंकुश राजतंत्र की परम्परा रही है या नहीं। इक़्तिदार आलम ख़ान[1] ने रामप्रसाद त्रिपाठी[2] के मत खिलाफ़ से मुखतलिफ तर्क दिया है और इस

---

[1] ख़ान, इक़्तिदार, आलम, (1972) 'टर्को-मंगोल थ्योरी ऑफ़ किंगषिप', *मिडिवल इंडिया – अ मिस्लेनी*, भाग II, अलीगढ़.

[2] त्रिपाठी, राम प्रसाद, (1959), *सम आसपेक्ट्स ऑफ़ मुस्लिम एडमिनिस्ट्रेषन*, द्वितीय संस्करण (इलाहाबादः सेंट्रल बुक डिपो).

पर बल दिया है कि तैमूर 'ख़ान' की निरंकुश शक्ति पर विश्वास नहीं करता था। तथापि, इस तथ्य से कि तैमूर के साथ ही शासन का एक औपचारिक समकक्ष मुखिया भी था, कदापि यह अर्थ नहीं निकलता है कि वह अपने संप्रभुता के सिद्धांत में निरंकुशता को महत्वपूर्ण नहीं समझता था।

ख़ानों द्वारा सांकेतिक शक्ति के प्रयोग के समानांतर, तैमूर द्वारा चग़ताई सिंहासन पर क्रमिक और सुस्थिर दावा किया गया। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु, ऐसा कहा जाता है कि एक दन्तकथा को लोगों के बीच प्रसारित किया गया था जिसने इस दावे को और विश्वसनीयता प्रदान की। इस दन्तकथा के मुताबिक़ चंग़ेज़ के दादा (काबुल ख़ान) ने काचुली बहादुर के साथ, जो क़ाराचर और तैमूर का पूर्वज था, एक समझौता किया था। इस समझौते ने चग़ताई तख्त का उत्तराधिकार तैमूर के वंशजों को सौंपा था। अबुल फ़ज़ल ने भी इस समझौते से संबंध जोड़ा है तथा मुग़ल शाही वंशक्रम का उल्लेख करते हुए लिखा है, 'यह कुलीन (अकबर की) वंशरेखा जिसे चग़ताई के नाम से जाना जाने लगा।'

तैमूर ने स्वयं को 'धरती पर ईश्वर की प्रतिछाया' घोषित कर संप्रभुता के दैवीय सिद्धांत को वास्तविक रुप से व्यवहार में लाया। उसने चंग़ेज़ ख़ान द्वारा बनाए गए नियमों के अनुरूप ही नियमों का एक संग्रह तैयार किया था। इसके अतिरिक्त उसने चंग़ेज़ के परिवार के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित किए ताकि इस क्षेत्र के ऊपर अपनी पकड़ को और मजबूत किया जा सके तथा उसने *गुरगान* की उपाधि भी धारण की थी। उसके निर्णय अंतिम और बाध्यकारी थे। ऑटोमन सुल्तान के साथ किए गए उसके पत्र-व्यवहार में उसे *ख़ान-ए आज़म* और *ख़ाक़ान-ए मुअज़्ज़म* कहा गया है। अपने शासन के बाद के वर्षों में केवल उसके नाम पर ही सिक्कों को ढाला गया तथा कठपुतली ख़ानों के नाम अब *ख़ुतबों* से अदृश्य होने लगे थे। कठपुतली *ख़ानों* की नियुक्ति उस क्षेत्र विशेष के ऊपर वैधानिक दावा करने की राजनीतिक युक्ति से अधिक कुछ भी नहीं थी जिसे यथार्थ में मंगोलों से प्राप्त किया गया था।

तिमूरिदों की राजनीतिक संरचना की प्रकृति भी इतिहासकारों के बीच विवाद का एक अन्य विषय है। कुछ विद्वानों के द्वारा उनकी राजव्यवस्था की प्रकृति के केंद्रीकृत होने का तर्क दिया गया है। इस क्षेत्र में अधिक केंद्रीकरण की प्रवृत्ति को देखा गया है। *उमरा* शासक की मुख्य शक्ति के स्रोत के रूप में कार्य करते थे। विशेष अधिकारों की परस्पर साझेदारी होती थी तथा सेवा में कार्यरत कुछ *उमरा* को विशेष दर्जा दिया जाता था, जैसा कि मुग़ल शासनकाल में भी देखा जा सकता है। *उमरा* को उनके परिवारों के साथ निष्कासित कर देने की चंग़ेज़ी प्रथा को बादशाह बाबर द्वारा भी व्यवहार में लाते हुए देखा जा सकता है।

उत्तराधिकार की परम्परा के संबंध में तैमूरिदों के अधीन योग्यता ही सिंहासनारोहण की सबसे महत्वपूर्ण कसौटी के तौर पर उभरी थी। इसके कारण मध्य एशिया तथा मुग़लकालीन भारत दोनों जगह गृह-युद्ध तथा विद्रोहों ने जन्म लिया। बाबर के संस्मरण में *ख़ाक़ान* के राजतिलक के समारोह का उल्लेख भी है। इस क्षेत्र में *ज़िल्ल-अल्लाह* की उपाधि के प्रचलन का संदर्भ भी मिलता है। इस प्रकार कई प्रकार के संप्रभुता के प्रतीक थे जिनके प्रयोग को तिमूरिद शासकों द्वारा मध्य एशिया के क्षेत्र में समुचित रूप से इस्तेमाल किया गया था।

मुस्लिम शासकों के लिए संप्रभुता के दो परंपरागत महत्वपूर्ण प्रतीक थेः शासक के नाम की *ख़ुतबे* में घोषणा करना तथा सिक्कों पर उसके नाम को उद्धृत करना। प्रार्थना में शासक का नाम घोषित करने की परंपरा का इतिहास पूर्व-इस्लामी समय से चला आया है। समय के साथ-साथ इस रीति ने अत्यधिक विश्वसनीयता हासिल की, विशेषकर मुश्किल भरे वक़्तों में सत्ता को जताने के लिए। लेकिन, सिक्कों पर नाम खुदवाने की प्रथा अपेक्षाकृत एक नई प्रथा थी। इस प्रथा को सबसे पहले अल्पकालिक रूप से उमय्यद ख़लीफ़ा अब्दुल मलिक द्वारा अपनाया गया तथा नामों की स्थिति में आए बदलावों तथा संप्रभुता की अभिव्यक्ति में परिवर्तन को प्रकट करने वाली किंवदंतियों में थोड़ी बहुत भिन्नता के साथ मध्य आठवीं शताब्दी से यह एक आम प्रचलन बन गया।

तैमूरिदों द्वारा वंशावली में जोड़-तोड़ तथा नाम-धारण के अनुरूप ही, मुग़ल वंशावली तथा उनकी विरासत की अभिपुष्टि ने उनके शासन तथा विजय की विचारधारा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। हमारे लिए अकबर से औरंगजेब तक उत्तराधिकार का वंशक्रम सुस्थापित है, लेकिन ये परम्पराएँ दर्शाती हैं कि इस अखंडित से दिखाई देने वाले दृश्य के नीचे कितना बिखरा और खंडित चित्र मौजूद था।

बोध प्रश्न-2

1) संप्रभुता के तुर्क-मंगोल सिद्धांत के प्रकाश में *तुरा* को परिभाषित कीजिए।

....

....

....

2) चंगेज़ ख़ान द्वारा प्रतिपादित संप्रभुता का दैवीय सिद्धांत क्या था? बाबर का इस सिद्धांत के विषय में क्या मत था?

....

....

....

3) संप्रभुता का दावा करते हुए तैमूर ने निम्नलिखित से किस उपाधि को धारण किया ?

क) *ख़ान-ए आज़म*

ख) *ख़ाक़ान-ए मुअज़्ज़म*

ग) *तुरा*

घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

4) तैमूर के शासनाधीन *ख़ानों* का प्रतीकात्मक आधिपत्य किस प्रकार अस्तित्व में था?

....

....

....

5) मुस्लिम शासकों द्वारा धारण किए जाने वाले संप्रभुता के दो परम्परागत प्रतीक क्या थे? यह क्या दर्शाते थे?

....

....

....

9.4 मुग़लों की संप्रभुता का सिद्धांत

आप देखेंगे कि मुग़ल संप्रभुता का सिद्धांत बाबर तथा हुमायूँ के समय में क्रमिक रूप से विकसित हुआ था। लेकिन, यह अपना ठोस स्वरूप केवल अकबर के समय में ही ग्रहण कर पाया था।

9.4.1 बाबर

ज़हीरूद्दीन मुहम्मद बाबर (1483-1530) भारत में तुर्क-मंगोल विचारों तथा धारणाओं की विरासत के साथ आया था, जिन्हें उसके यहाँ आगमन पर तथा उसके बाद के शासकों द्वारा व्यवहार में लाया गया। बाबर के आगमन तक भारतीय सामाजिक व सांस्कृतिक परिदृश्य एक सम्मिलित स्वरूप ग्रहण कर चुका था। हालांकि, राजनीतिक मोर्चे पर काफ़ी अराजकता तथा आम जनता के बीच असुरक्षा की भावना मौजूद थी। बाबर का शासन अत्यधिक राजनीतिक विखंडन के लिए जाना जाता है।

बाबर के वंशजों की स्मृति में समरक़ंद पुरखों की भूमि तथा तैमूर एक वंशीय संप्रभु के रूप में बना रहा। हम स्वयं बाबर बादशाह द्वारा ऐतिहासिक वर्णन में बारंबार पुरखों की भूमि के लिए प्रेम के वर्णन का उल्लेख पाते हैं। तैमूरिदों की तरह मुग़लों ने भी *गुरगान* या दामाद की उपाधि धारण कर रखी थी। अधिक्षेत्र के पैतृक विभाजन या *सूबा-ए गुज़ारा-ए शहज़ादा* सिद्धांत के मुताबिक़, जिसमें राजपरिवार की संतानों को प्रांतों के सूबादार के रूप में प्रशिक्षित किया जाता था, बाबर के दादा ने अपने राज्य के क्षेत्रों को अपने पुत्रों के लिए चार *सूबा-ए गुज़ारा* के रूप में बाँटा था।

बाबर को फ़रगाना का *सूबा-ए-गुज़ारा* दिया गया था, अपनी पूरी जवानी वह खोए हुए इस *सूबा-ए गुज़ारा* को वापस पाने तथा अपनी वंशानुगत राजधानी समरक़ंद को जीतने के प्रयास करता रहा। बाबर बादशाह द्वारा इस सिद्धांत को प्रारंभ से ही कार्यान्वित किया गया था तथा बदख़्शां की महत्वपूर्ण सूबेदारी उसके सबसे बड़े पुत्र हुमायूँ को दी गई थी। कंधार का क्षेत्र छोटे पुत्र कामरान को दिया गया था। साझी संप्रभुता की व्यवस्था में अंतर्निहित कमज़ोरियों के अलावा, इसने साम्राज्य की एकता के लिए ख़तरा पेश करना जारी रखा।

बाबर की धार्मिकता उसके राजत्व की संकल्पना से गहराई से जुड़ी थी। उसने समकालीन सूफ़ी *औलियाओं* से संबंध बनाए रखा, मृत संतों की दरगाहों की यात्रा की तथा उनके बारे में स्वप्न देखे। इन अंतःक्रियाओं ने बादशाह को आवश्यक मार्गनिर्देशन तथा दिशा दिखाई। इसने अंततः उसे भारत में गद्दी पर बैठने की ओर प्ररित किया। बाबर के शाही दरबार में नक्शबंदी सूफ़ियों ने आध्यात्मिक *उमरा* का दर्जा हासिल कर लिया था। इसने मुग़ल साम्राज्यिक दरबार को वैधानिकता प्रदान की, जैसा कि यह तिमूरिदों के नक्शबंदियों के साथ ऐतिहासिक सहयोग को बढ़ावा देता था। वे ऐसे अवयव थे जिन्होंने मध्य एशिया में अपने प्रभाव के कारण राजनिर्माताओं की भूमिका भी निभाई थी।

वास्तुकला के क्षेत्र में, बाबर तथा उसके वंशजों ने मध्य एशिया में प्रचलित *चहार-बाग़* परंपरा को पुनर्सृजित किया। मावराउन्नहर (ट्रांसऑक्सियाना) में बाग़ीचे रचनात्मक तथा साझी अभिव्यक्ति के स्थलों के रूप में कार्य करते थे। इन बाग़ों में *मजलिस* आयोजित करने की तिमूरिद परम्परा को बाबर बादशाह यहाँ याद किया करता था। बाद के बादशाहों द्वारा शाही शक्ति की याद दिलाने वाले भ्रमणशील दरबार की परम्परा को अपनाया गया। इस तरह के दरबार राजनीतिक नियंत्रण की तुर्क-मंगोल परम्परा का हिस्सा थे। इस तरह का निरंतर भ्रमण साम्राज्य की संप्रभुता के ख़तरे को कम कर देता था।

9.4.2 हुमायूँ

बादशाह बाबर को एक विजेता के रूप में मुग़ल साम्राज्य का संस्थापक माना जा सकता है न कि एक प्रशासक के रूप में। बाबर का ज्येष्ठ पुत्र सम्पन्नता के वातावरण में पैदा हुआ था। उसकी पहली महत्वपूर्ण ज़िम्मेदारी बदख़्शां के सूबेदार के रूप में थी जब वह बारह वर्ष की उम्र का था। अपने पिता की मृत्यु के समय ख़ाली ख़ज़ाने के साथ उसके सम्मुख कई चुनौतियाँ थीं। इनमें से कई चुनौतियों का सामना करने में वह सफल नहीं रहा था, सिवाय अपनी मृत्यु के समय से पहले दिल्ली की गद्दी को वापस पाने के। उसके पुत्र (अकबर) की उपलब्धियों तथा उसके द्वारा प्राप्त भव्यता ने उसके पिता की सत्ता को विस्तारित किया।

राजनीति के क्षेत्र में, गुटबंदी ने एक स्थायी साम्राज्य की स्थापना के लिए चुनौती पेश की। बादशाह हुमायूँ ने अपने भाइयों द्वारा पेश आई चुनौतियों के कारण अपने साम्राज्य को खो दिया था। अकबर को भी राजनीतिक विरोध का सामना करना पड़ा तथा सेना में तूरानियों और ईरानियों को संतुष्ट करना पड़ा। विभिन्न गुटों द्वारा पाला बदलने का ख़तरा बना रहता था। हुमायूँ के बचपन का प्रशिक्षण भी परम्परागत सिद्धांतों के अंतर्गत हुआ था ताकि एक हिस्से पर नियंत्रण रखने की कला सीखकर अंततः वह संपूर्ण राज्य-क्षेत्र को शासित कर सके। *सूबा-ए गुज़ारा* की यह व्यवस्था अकबर के शासनकाल में तिरोहित कर दी गई तथा फिर इसके बाद इसको कभी व्यवहार में नहीं देखा गया। राज्यारोहण की इस नीति में परिवर्तन के पीछे कोई कारण नहीं बताया गया है। इसके साथ ही शहज़ादों की सूबेदारी को लगातार परिवर्तित किया जाता था। किंतु ये सभी बदलाव भी संप्रभुता के लिए होने वाले संघर्षों में कोई ख़ास बदलाव नहीं ला सके जिन्होंने मुग़ल दरबार के लिए ख़तरा प्रस्तुत करना जारी रखा। बदख़्शां का उथल-पुथल भरा इलाक़ा, जो तिमूरिद राजकुमारों का परम्परागत इलाक़ा था, विद्रोहियों के लिए शरण-स्थल बन गया। हुमायूँ का भाई कामरान इस क्षेत्र में शरण खोज रहा था, जहाँ विद्रोही तिमूरिद शासकों ने कुछ भूमि पर क़ब्ज़ा कर लिया था। जब हुमायूँ ईरान से अपने पैतृक क्षेत्र पर दावा करने के लिए, सफ़ावियों की मदद से, लौटा तो वह अपनी सेनाओं को पहले समरक़ंद की ओर ही ले गया। केवल तब, जब उसे उज़बेक़ों द्वारा वहाँ से खदेड़ दिया गया, वह उत्तर भारत की ओर बढ़ा।

हुमायूँ, अपने पिता तथा पूर्वजों के विपरीत, लोगों से दूरी बनाए रख अलगाव में रहने की प्रवृत्ति रखता था। उसके पिता ने उसे नियमित रूप से अपने साथियों तथा अनुचरों के साथ सामाजिक मेल-जोल बढ़ाने का निर्देश दिया था ताकि सामाजिक एकजुटता हासिल की जा सके। नियमित रूप से होने वाली मयकशी की महफ़िलों में संप्रभु की भागीदारी का राजनीतिक औचित्य बताया गया। इसी परंपरा की भाँति, हुमायूँ बिना किसी आत्मग्लानि के अफ़ीम की नशाखोरी करने की बात स्वीकारता है। यह एक बदकिस्मत तिमूरिद विरासत थी जिसने साम्राज्य को दांव पर लगा दिया।

राजनीतिक चुनौतियों के बावजूद तथा अपने पिता द्वारा शुरुआती आधार तैयार करने के बाद, हुमायूँ ने अपने दरबार में कुछ शानदार आनुष्ठानिक रीतियों की शुरुआत की। उसके द्वारा उठाए गए ये सभी क़दम तब थम गए जब उसे देश छोड़ने को मजबूर होना पड़ा। उसकी असमय मृत्यु तथा उसके अल्पकालिक शासन ने उसे वक़्त नहीं दिया कि वह मुग़ल साम्राज्य के लिए राजत्व के सिद्धांत को गढ़ पाता। यह केवल अकबर के सत्ता में आने पर ही हो पाया कि साम्राज्य को सुदृढ़ किया जा सका और राजत्व की महिमा को ऊँचा उठाया जा सका।

9.4.3 अकबर

मुग़ल सम्राट अकबर के अधीन राजत्व के एक नए सिद्धांत को सूत्रबद्ध किया गया। इस सिद्धांत ने संप्रभु को अर्द्ध-दैवीय परा-धार्मिक दर्ज़ा दिया। दैवीय प्रकाश के रूप में संप्रभु की इस संकल्पना का स्रोत शिहाबुद्दीन मक़तूल के सिद्धांतों में था तथा यह 'ईश्वर की प्रतिछाया' (*ज़िल्ल-अल्लाह*) के रूप में संप्रभु की उत्तर-अब्बासी इस्लामी धारणा से पृथक था। और यह भी, यह आश्वस्त करना इस निरंकुश संप्रभु का कर्तव्य माना जाता था कि सभी सम्प्रदायों से संबंध रखने वाले प्रजा-जनों को एक नज़र से देखा जाए। सभी के साथ शांति (*सुलह-ए कुल*) क़ायम रखना उसका दायित्व था। संप्रभुता की यह संकल्पना प्रत्यक्ष तौर पर अकबर की धार्मिक नीति से जुड़ी थी।

अकबर की धार्मिक नीति ने यह सुनिश्चित किया कि विभिन्न सामाजिक समूहों से संबंध रखने वाले लोगों को साथ में रखा जाए, उनमें से किसी को भी अतिरिक्त शक्ति दिए बिना। इस धारणा को प्रजा के बीच इस हद तक ग्रहण कर लिया गया था कि *झरोखा दर्शन* जैसी रीति – जो पहले के किसी भी हिंदू राजा के लिए अज्ञात थी – अधिकांश प्रजा के धार्मिक जीवन की दिनचर्या का हिस्सा बन गई। यह सिद्धांत दिन-प्रतिदिन की अभिव्यक्ति के रूप में सामने आया। *बिसात-ए निशात* के बैठने की व्यवस्था में संप्रभु के स्थान का ब्रह्मांड में सूर्य के स्थान के समरूप होना भी इसी सिद्धांत की याद दिलाता था।

इसके साथ ही, इब्न ख़ल्दून के राजत्व की अवधारणा अबुल फ़ज़ल द्वारा प्रतिध्वनित होती है। कराधान के तंत्र को देश में क़ानून और व्यवस्था बनाए रखने के बदले में राजा को दिए गए भुगतान के रूप में देखा जाता था। यह संकल्पना प्राचीन भारत के कई संस्कृत ग्रंथों में स्वीकार्य सिद्धांत के समान ही थी। धार्मिक नीति में यह परिवर्तन तथा राजत्व के नए सिद्धांत के उभार ने ग़ैर-मुस्लिमों को प्रदत्त राजस्व-मुक्त भूमि के अतुल अनुदानों को बढ़ावा दिया ताकि उपासना-स्थलों का निर्माण किया जा सके। इसका परिणाम *जज़िया* को समाप्त करने के रूप में भी निकला। शिया अनुयाइयों को आम मस्जिदों में नमाज़ पढ़ने की अनुमति दी गई। *इंसान-ए कामिल* की अपनी भूमिका में अकबर को *शरिया* को इस तरह अमल में लाना था कि यह प्रजा के बीच पूर्वाग्रहों को बढ़ावा न दे। 1579 में *महज़र* की घोषणा भी एक अन्य मील का पत्थर थी जिसने संप्रभु के ओहदे को उठाकर उन मामलों में अंतिम मध्यस्थ बना दिया, जहाँ मुस्लिम धर्मविदों के बीच असहमति थी। राजा द्वारा साम्राज्य को मूर्त रूप देने की धारणा न केवल रीतियों और व्यवहारों में प्रकट होती थी बल्कि स्थापत्यगत संरचनाओं के माध्यम से भी प्रकट होती थी। राजधानी नगर अब केवल स्थान विशेष से नहीं पहचाना जाता था। यह बदलता रहता था तथा स्वयं बादशाह की मौजूदगी द्वारा चिह्नित होता था।

अन्य विषयों के साथ-साथ अबुल फ़ज़ल की रचनाओं में अभिव्यक्त न्याय, राजनीति, तर्क, धर्म तथा शासन के संबंध में चर्चा को, दी गई ऐतिहासिक परिस्थिति में शासन की शैली को परिवर्तित तथा पुनर्संगठित करने के प्रयासों के पीछे मौजूद राजनीतिक-धार्मिक विचार के रूप में समझने की आवश्यकता है। इतिहासकार इन नीतियों को बादशाह के व्यक्तित्व की रोशनी में समझने का तर्क भी देते हैं। एक ऐसा बादशाह जो हिंदू राजा के घर पर पैदा हुआ था तथा जिसके पिता ने शाह तहमस्प

– ईरान के शिया सम्राट – से सहायता माँगी थी और जिसने स्वयं छवि-चित्रण की कला सीखी थी, जिसे अन्यथा इस्लाम में वर्जित माना जाता था।

इनमें से अधिकांश क़दमों तथा अकबर के दरबार के राजत्व के सिद्धांत के पीछे कई प्रभावी कारक थे। इनमें बहुत से शुरुआती इस्लामी धर्मशास्त्रियों तथा सूफियों (इब्न-अल-अरबी तथा तुर्तुशी) से लेकर शिहाबुद्दीन मक़्तूल के प्रकाश केंद्रित विचार और शिहाबुद्दीन सुहरावर्दी के *इशराक़ी* सिद्धांत भी शामिल थे। राजत्व के सिद्धांत पर नसीरुद्दीन तूसी के नासिरी *अख़लाक़* (नीतिशास्त्र) का प्रभाव तो औरंगज़ेब के शासनकाल में भी प्रभावी बना रहा माना जाता है। इन प्रभावों की सीमा तथा अकबर के दृष्टिकोण व उसके द्वारा इसकी साहसिक अभिव्यक्ति की भूमिका को लेकर ऐतिहासिक वाद-विवाद रहा है। राजत्व के इस सिद्धांत पर किसी एक ही बौद्धिक परम्परा के प्रभाव को बढ़ा-चढ़ा कर नहीं देखना चाहिए।

ये स्थापित नीतियाँ 1560 तथा 1570 के दशक के दौरान जारी रहीं। इनमें से कई सहिष्णु राज्य नीतियाँ जो अकबर के शासन के दौरान उभरीं, जहाँगीर द्वारा इनका पुनरीक्षण किया गया। लेकिन, मुग़ल राज्य की बृहद प्रकृति तथा राजत्व के सिद्धांत को सत्रहवीं शताब्दी के दौरान बनाए रखा गया। बादशाह औरंगज़ेब द्वारा अपनायी गई रूढ़िवादी नीतियों के बावजूद, ऐसे संदर्भ (क्षेत्रीय शासकों के पत्रों के रूप में) मिलते हैं जो अबुल फ़ज़ल द्वारा परिभाषित राजत्व की संकल्पना को मुग़ल शाही ख़ानदान द्वारा उच्च सम्मान दिए जाने की पुष्टि करते हैं। औरंगज़ेब द्वारा फिर से *जज़िया* लगाए जाने (1679) की कई मुग़ल अधिकारियों ने आलोचना की थी जो अकबर द्वारा अपनायी गई राज्य-नीतियों की प्रशंसा करते थे।

अकबर के शासनकाल की शुरुआत से लेकर औरंगज़ेब के काल तक मुग़ल शाही मोहर पर तिमूरिद वंशावली पर बल दिया जाता रहा था। राजगद्दी पर बैठते समय जहाँगीर का ज़िक्र दूसरे तैमूर के रूप में किया गया है। पच्चीस वर्षों बाद, बादशाह शाहजहाँ ने अपने सिक्कों में *साहिब क़िरान-ए सानी* – अपने शासनकाल में तैमूर द्वारा धारित उपाधि – की उपाधि धारण की। लघुचित्रों को नया रूप दिया गया ताकि तिमूरिद वंश से संबंध को दृश्य-रूप दिया जा सके।

अकबर की धार्मिक नीति
परिवर्तन तथा विकास

के. ए. निज़ामी ने अकबर की धार्मिक नीति के संदर्भ में उसके शासनकाल को तीन चरणों में विभाजित किया हैः प्रथम, 1556-74, द्वितीय, 1574-80 तथा तृतीय, 1580-1605। पहले चरण को प्रकृति में समझौतापरक माना जाता है, जब *जज़िया* को हटा लिया गया था, इस प्रकार की पहलों को एस. ए. ए. रिज़वी जैसे इतिहासकार बादशाह द्वारा राजनीतिक चुनौतियों तथा विद्रोहों, ख़ासकर तूरानी *उमरा* द्वारा प्रस्तुत, का सामना करने के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं। इस नीति में भूमि अनुदान, वैवाहिक सम्बन्ध तथा सैन्य सुविधाओं का मिश्रण था। दूसरे चरण में, आक्रामक अभिवृत्ति को अपनाया गया ताकि मुस्लिम रूढ़िवादी तत्वों को तुष्ट किया जा सके। और आत्मावलोकन के आखिरी चरण के दौरान, अकबर के धार्मिक विश्वासों के घनीभूत होते जाने के साथ नीतियों में बदलाव को देखा जा सकता है। *सुलह-ए कुल* तथा *वहदत-उल वुजूद* के सिद्धांतों पर आधारित एक राज्य की स्थापना की गई। इस तरह के क़दमों ने – जो राजनीतिक तथा धार्मिक चुनौतियों का सामना करने हेतु विकसित हुए थे – साम्राज्य को इस सीमा तक संस्थात्मक आधार प्रदान किया था कि 1857 में भी मुग़ल सम्राट जनता के मस्तिष्क में 'संप्रभुता की सर्वोच्च अभिव्यक्ति' बना रहा था।

9.5 मुग़ल साम्राज्यिक सत्ता का निर्माण

मुग़ल शासकों के राजत्व के सिद्धांत को लेकर विद्वानों के बीच व्यापक बहस रही है। कुछ इतिहासकारों, जैसे जॉन एफ. रिचर्ड्स, का यह मानना है कि शासन की मुग़ल प्रकृति को समझने में मुगलों की मध्य एशियाई विरासत का योगदान नगण्य ही है। वहीं दूसरे इतिहासकारों, जैसे मुज़फ़्फ़र आलम, मारिया इवा सबटेल्नी, रिचर्ड्स फ़ोल्ट्स, संजय सुब्रह्मण्यम तथा स्टीफ़ेन डेल का यह मानना है कि उनके अपने से पूर्व के शासन के साथ अनुभवों को समझ कर मुग़ल साम्राज्य के चरित्र तथा

उसकी संप्रभुता के सिद्धांत को समझना सरल होगा। सर्व-प्रसिद्ध तथा विशाल जनसंख्या वाले मुग़ल साम्राज्य का अध्ययन अलग रखकर नहीं किया जा सकता है। अतः, मध्य एशियाई तुर्क-ईरानी विरासत के बृहद संदर्भ में इसको रख कर देखना, महत्वपूर्ण है।

जे. एफ़. रिचर्ड्स के अनुसार मुग़ल सत्ता का निर्माण दो आधारों वाली पद्धति पर हुआ थाः प्रथम, एक प्रकाशकेंद्रित सिद्धांत (*फ़र्र-ए इज़दी*) तथा दूसरा, शाही अनुयायियों के एक समूह का सृजन (*तौहीद-ए इलाही*)। यह दोनों उपाय साझी संप्रभुता के बजाय संप्रभु सम्राट के ओहदे पर बैठे व्यक्ति पर बल देते थे। आर. पी. त्रिपाठी तथा इक़्तिदार आलम ख़ान ने इसे 'राजत्व के तुर्क-मंगोल सिद्धांत' के रूप में वर्णित किया है। इस कार्य का परिणाम संप्रभु द्वारा *शरिया* की लचीली व्याख्या में निकला।

प्रारंभिक बीसवीं शताब्दी में फ्रांसिस विलियम बटलर द्वारा किए गए अध्ययन, उनके निबंध 'द ओरिएंटल डेस्पॉट' ने मुग़ल संप्रभुता को एक 'नैगमिक राजत्व' (corporate kingship) के रूप में देखा है। एम.एन. पियरसन के अनुसार, *खिल्लत* प्रदान करने से जुड़ा हुआ चित्रण, अन्य अनुष्ठानों के साथ-साथ, आनुष्ठानिक रूप से बादशाह के शरीर में *उमरा* को समाहित कर लेने का प्रतीक था। हाल के समय में, विद्वानों ने मध्यकालीन भारत में सांस्कृतिक स्वरूप तथा प्रशासनिक संगठन के पीछे इस्लामी पूर्वधारणा को स्वीकार करना शुरू किया है।

मुग़ल साम्राज्य की स्थापना की पूर्व संध्या पर भारतीय राजनीतिक परिवेश प्रतिद्वंद्विता तथा *उमरा* की वैमनस्यता से ग्रस्त था। हुमायूँ के पुत्र तथा अकबर के सौतेले भाई मिर्ज़ा हाकिम (1554-85) के द्वारा काबुल में स्थापित समानांतर राजनीतिक शक्ति के केंद्र को समाप्त करना ही भारत में स्थाई साम्राज्य की स्थापना के संबंध में मुगलों के लिए एक महत्वपूर्ण विकासक्रम था। मुगलों ने दिल्ली के सुल्तानों से कई दरबारी रीति-रिवाजों को विरासत में पाया था जिसमें उन्होंने चंगेज़ी परंपराओं को जोड़ा। राज्य के कार्य-संचालन में विभिन्न तबकों के समावेश ने और भी अन्य प्रथाओं और व्यवहारों को अपनाने में योगदान दिया। इन सभी अनुष्ठानों ने सम्राट के ओहदे को और ऊँचा उठा दिया।

इस प्रकार सैद्धांतिक और व्यवहारिक रूप में, मुगलों के राजत्व की संकल्पना केवल अपने पूर्वजों की विरासत से ही निर्मित नहीं थी। दरबारी इतिहासकारों ने संप्रभु-शासक की विजयों और शासन को उसके न्यायप्रिय प्रशासक के रूप में वर्णन द्वारा भी उचित ठहराया जो अपनी प्रजा को पीड़ा और शोषण से बचाएगा। कई बार, किसी शासक के शासनकाल में, उसके राज्य-क्षेत्र में उसके कृत्यों को धार्मिक आधारों तथा इस्लाम की रक्षा के नाम पर उचित ठहराया जाता था। तथापि, शाही वंशक्रम से संबंध मुग़ल संप्रभुता के सिद्धांत के मुख्य निर्माणकारी तत्वों में से एक था। साररूप में, इसमें निम्नलिखित सिद्धांत शामिल थेः

- **वंशगत पहचानः** अपने पूर्वजों की परम्परा तथा सम्बन्धों को ऊँचा उठाकर तथा महिमामंडित कर मुग़ल शासक अपने वंश के गौरव को बढ़ा रहे थे। हिंदुस्तान की भूमि पर अपने शासन का औचित्य राजसी रक्त की गुणवत्ता के आधार पर करने ने उनकी वैधानिकता को विश्वसनीयता प्रदान की।
- **मध्यकालीन भारत में इतिहास-लेखन की परम्परा तथा मुग़लों के अधीन सृजित दरबारी आख्यानों तथा ऐतिहासिक ग्रंथों में मुस्लिम शासन की केन्द्रीयताः** लोकप्रिय नामकरण 'मुग़ल' का प्रथम साक्ष्य सूफ़ी संत अब्दुल क़ुदुस गंगोही के वार्तालाप को दर्ज़ करने वाले एक ग्रंथ में मिलता है, जिसकी रचना भारत में मुग़ल शासन की स्थापना के बारह वर्ष बाद की गई थी[3]।
- **उमरा के साथ संबंधः** विविध समूहों की निष्ठा प्राप्त कर उन्हें *उमरा* वर्ग में शामिल किया गया था। इसने विभिन्न नृजातीय समूहों से संबंध रखने वाले *उमरा* के बीच सगोत्रीय निष्ठा की प्रवृत्ति को कम किया।
- ***उलमा* की अधीनस्थताः** संप्रभु तथा *उलमा* के बीच सम्बन्धों ने सम्राट के दैवीय पद पर आसीन व्यक्ति से निरंकुश सत्ता की सीमा को निर्धारित किया।

[3] रुक्नुद्दीन, *लतायफ़-ए कुद्दूसी*, दिल्ली, 1131 ए एच/1994 ए डी.

- **प्रजा तक पहुँचः** नियमित प्रथाएँ जैसे *दीवान-ए आम* की संस्था तथा *झरोखा दर्शन* संप्रभु को प्रजा के निकट लाती थीं। इसने राजत्व के मुग़ल व्यवहार में करुणा तथा उदारता के तत्वों को जोड़ा।
- **दरबारी रीतियाँ तथा समारोहः** दरबारी परिधानों से लेकर सम्मानसूचक पोशाक (*खिल्लत*) तक, दरबारी प्रथाएँ उच्च ओहदों तक पहुँच तथा संप्रभु द्वारा संरक्षण को दर्शाती थीं। पोशाक (*खिल्लत*) उपहार देने की प्रथा की जड़ें शुरुआती अब्बासी काल में तथा ख़लीफ़ा के दरबार में थीं। ये प्रथाएँ शाही दरबार में सत्ता तथा पद सोपानक्रम (rank) को अभिव्यक्त करती थीं।
- **वैवाहिक मैत्रीः** मुग़ल साम्राज्य में वैवाहिक संबंध अभिजात्य समूहों की स्थिति को ऊपर उठाने में सहायक थे। इसी के साथ प्रतिष्ठा तथा प्राधिकार शांतिपूर्ण कूटनीतिक संबंधों को बनाए रखने से भी ऊँचे उठते थे।
- **नई पहचानों का सृजनः** न केवल सम्मानसूचक पोशाक (*खिल्लत*) तथा वैवाहिक संबंध किसी व्यक्ति को बादशाह से जोड़ते थे, बल्कि संप्रभु-सम्राट के साथ आदरपूर्ण संबंध स्वयं व्यक्ति को एक नई पहचान देते थे।

भारत में मुग़ल शासन के विभिन्न चरणों में राजत्व का सिद्धांत क्रमिक रूप से विकसित हुआ था। प्रारंभिक सोलहवीं शताब्दी में, बाबर द्वारा साम्राज्य की स्थापना के समय, दक्खन के राज्य स्वयं को संप्रभु प्रतिष्ठान के रूप में देखते थे। उस समय दक्खन के शासक ईरान से अपनी वैधानिकता प्राप्त करते थे। समय के साथ-साथ इसमें परिवर्तन आया। औरंगजेब के अधीन साम्राज्य की भौगोलिक सीमाओं में परिवर्तन के साथ विजयनगर की संप्रभुता के विचार का स्थान, दक्षिण में मुगलों ने ले लिया। सत्रहवीं शताब्दी में साम्राज्य के विस्तार के दौरान मुग़ल भारत में संप्रभुता के एकमात्र आधार के रूप में देखे जाने लगे, यह मराठों के लिए भी जो अपनी शक्ति में वृद्धि कर रहे थे और बाद में, ईस्ट इंडिया कंपनी के लिए भी जो मुग़ल संप्रभुता के ढाँचे के पीछे से कार्य कर रहे थे, एक वास्तविकता थी।

संप्रभुता की अभिव्यक्ति

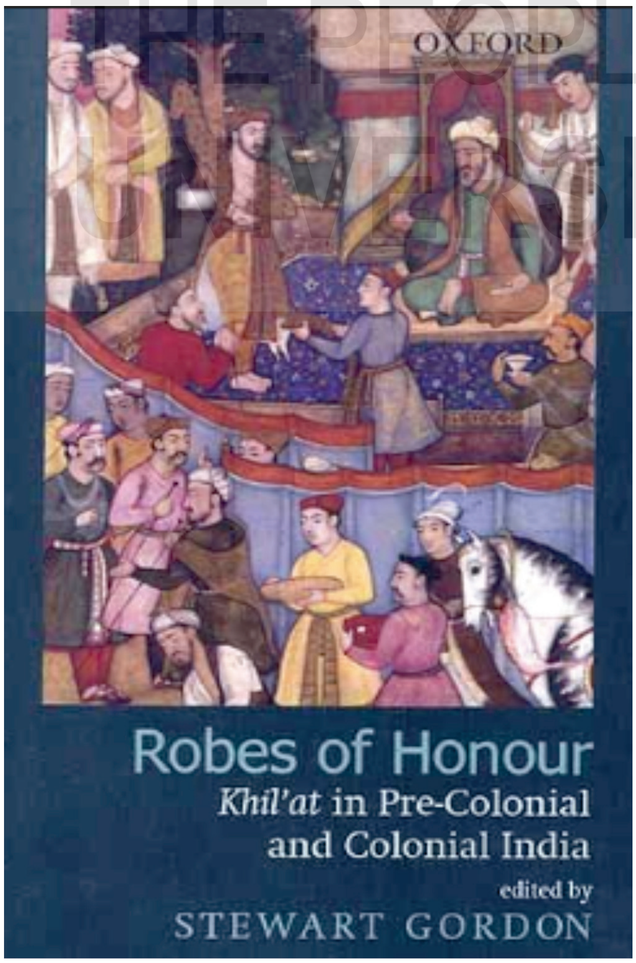

संप्रभुता की अभिव्यक्ति

मुग़ल सम्राटों द्वारा व्यवहार में लाया गया संप्रभुता का सिद्धांत प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त होता था। इस प्रतीकात्मकता में वे समारोह शामिल थे जो मुग़ल दरबार में बहुत ही सम्मानपूर्वक आयोजित होते थे। इसमें से दो महत्वपूर्ण समारोहों का नीचे वर्णन किया जा रहाः

झरोखा दर्शनः यह बादशाह द्वारा महल के झरोखे पर प्रजा के सामने दर्शन देने की प्रथा थी। यह आमजन को संप्रभु की एक झलक पाने का अवसर प्रदान करती थी। संप्रभु का व्यक्तित्व स्वयं साम्राज्य का स्वरूप था, इस प्रकार उसको चुनौती देने का अर्थ साम्राज्य को चुनौती देना था। दर्शन पाने वाले उसके स्वस्थ होने तथा साम्राज्य की स्थिरता के प्रति आश्वस्त रहते थे। यह प्रजा-जन के लिए नियमित रिवाज बन गया था। मुग़ल शासन में इस रीति को सबसे पहले बादशाह हुमायूँ द्वारा अपनाया गया था। मुग़लों द्वारा दौरे पर होने के दौरान भी *दो-आशियाना मंज़िल* के माध्यम से *झरोखा दर्शन* को जारी रखा जाता था। अब केवल राजधानी पर हमला कर साम्राज्य का तख्तापलट नहीं किया जा सकता था। *दो-आशियाना मंज़िल* एक प्रकार का लकड़ी का बना हुआ घर था जिसे इधर-उधर ले जाया जा सकता था ताकि इस प्रथा का निर्वाह किया जा सके। *झरोखा दर्शन* को क्षेत्रीय राज्यों द्वारा भी अपनाया गया। यहाँ तक कि औपनिवेशिक सत्ता ने भी दिल्ली दरबार के मौक़े पर लाल क़िले से इस रीति का निर्वाह किया।

सम्मानसूचक पोशाक/*ख़िल्लतः* बादशाह द्वारा संरक्षण के प्रतीक के रूप में पोशाक का उपहार देना *ख़िल्लत* कहलाता था। *ख़िल्लत* एक अरबी शब्द है, जिसका अर्थ सम्मानसूचक पोशाक होता है। इसका फ़ारसी समानार्थी *सिर-ओ-पा* था। इस समारोह का कई मध्यकालीन इस्लामी राज्यों द्वारा पालन किया जाता था तथा प्रारम्भिक अब्बासी काल में, बग़दाद में, यह एक ख़िलाफ़त परम्परा के रूप में सुस्थापित हो चुका था। यह समारोह दिल्ली सल्तनत तथा सभी दक्खनी राज्यों में प्रचलन में था। उपहारों का आदान-प्रदान उपहार पाने वाले को बादशाह के साथ निष्ठापूर्ण संबंधों में बांध देता था। बाबर इस चंगेज़ी-तिमूरिद परम्परा से वाक़िफ़ था। यह अभिजात्य समूह से संबंध रखने वाले बहुत से व्यक्तियों के लिए पहचान का चिह्न था तथा नए समूहों को साम्राज्य के ढाँचे में समाहित करता था। इस रीति का निर्वाह आधिकारिक दूतों के माध्यम से दरबार के बाहर भी किया जाने लगा।

एक नौकरशाही व्यवस्था के बावजूद, सर्वोच्च सत्ताधारक के रूप में संप्रभु का विचार इस तरह के समारोहों के माध्यम से अभिव्यक्त होता था। इस दरबारी राजनीति का दृश्यात्मक निरूपण मुग़ल क़ालीन चित्रों में देखा जा सकता है। यह मुग़ल राज्य में किसी व्यक्ति के रुतबे और दर्ज़े को प्रदर्शित करते थे।

बोध प्रश्न-3

1) चर्चा कीजिए कि किस सीमा तक मुग़ल राज्य के अंतर्गत बाबर ने तुर्क-मंगोल परम्परा को ग्रहण किया था?

....

....

2) क्या बादशाह हुमायूँ मुग़लों के राजत्व के सिद्धांत का आधार बनाने में सफल रहा था? अपने उत्तर के कारण दीजिए।

....

....

3) संप्रभुता का सिद्धांत किस प्रकार अकबर द्वारा व्यवहार में लायी गई धार्मिक नीति से जुड़ा हुआ था? व्याख्या कीजिए।

....

....

4) वे कौन सी विभिन्न युक्तियाँ थीं जिन्हें अकबर द्वारा अपने राजत्व के सिद्धांत को प्रतीकात्मक ढंग से प्रदर्शित करने के लिए अपनाया गया? इस संकल्पना के पीछे कौन से प्रेरक तत्व थे?

....

....

5) क्या अकबर द्वारा व्यवहार में लाया गया राजत्व का सिद्धांत उसके बाद के शासनकाल में जारी रहा? संक्षेप में वर्णन कीजिए। इसके साथ ही, इस सिद्धांत की उन विभिन्न अभिव्यक्तियों का उल्लेख कीजिए, जिन्हें बाद के शासकों द्वारा व्यवहार में जारी रखा गया था।

....

....

....

....

6) मुग़ल संप्रभुता के सिद्धांत के प्रमुख सूत्र क्या थे? चर्चा कीजिए।

....

....

....

7) मुग़ल साम्राज्य में व्यवहार में लाए गए संप्रभुता के सिद्धांत पर ऐतिहासिक वाद-विवाद पर टिप्पणी कीजिए।

....

....

....

8) सही कथनों पर सही (✓) या गलत (×) का निशान लगाएँ:

क) जे. एफ़. रिचड्र्स का मत था कि मुग़ल प्राधिकार का सूत्रीकरण द्विआधारी पद्धति पर हुआ थाः *फ़र्र-ए इज़दी* तथा *तौहीद-ए* इलाही का निर्माण। ( )

ख) *खिल्लत* प्रदान करने से संबंधित निरूपण, अन्य रीतियों के साथ, आनुष्ठानिक रूप से सम्राट के शरीर में *उमरा* को समाहित करने का प्रतीक था। ( )

ग) मुग़लों ने दिल्ली सुल्तानों की दरबार परम्परा की किसी भी रीति को विरासत में नहीं पाया था। ( )

घ) मुग़लों द्वारा व्यवहार में लाया गया राजत्व का सिद्धांत केवल वंशीय पहचान से उत्पन्न वैधानिकता के तत्व से निर्मित था। ( )

9.6 सारांश

सारांशत, इस इकाई के अध्ययन के दौरान, हमने उन विभिन्न स्वरूपों को समझने की कोशिश की, जो संप्रभु-मुग़ल शासकों के शासन के दौरान राजत्व ने ग्रहण किया। कई बार, ये भूमिकाएँ अपनी प्रकृति में दमनकारी थीं, तो अन्य मौक़ों पर ये भूमिकाएँ उदार थीं। मुग़ल दरबार में कई प्रतीकात्मक अनुष्ठान संप्रभु के प्रति निष्ठा तथा वफ़ादारी को परिभाषित करते थे। दरबार में उपहारों का आदान-प्रदान संरक्षण के तत्व को प्रदर्शित करता था तथा संप्रभु-शासक को अपनी प्रजा के प्रति प्रतिबद्ध करता था। शाही सेवाओं में वफ़ादारों को समाहित करना देश के राजनीतिक प्रशासन के लिए अतिरिक्त लाभ साथ लाता था। निष्ठा की शपथ राजनीतिक उपहार का एक अन्य स्वरूप थी। बादशाह की शख्सियत साम्राज्य का साकार स्वरूप थी और उसको, या किसी भी ऐसी चीज़ जो उसका प्रतीक थी, को चुनौती देने का अर्थ साम्राज्य को चुनौती देना था। ये सभी अनुष्ठान तथा समारोह मुग़ल राजत्व के सिद्धांत द्वारा धारित विचारों तथा मूल्यों को प्रसारित करते थे तथा उसे दृश्यात्मक स्वरूप तथा सारतत्व प्रदान करते थे। ये प्रतीकार्थ अन्य व्यवस्थाओं द्वारा धारित अर्थों को अतिव्याप्त करते थे। वे मुग़लों के विविध समूहों के बीच संवाद के माध्यम के रूप में कार्य करते थे।

मुग़ल शासकों के निजी संस्मरणों को सचेत ढंग से संप्रभु-सम्राट की वैधानिकता को न्यायसंगत ठहराने के लिए रचा गया था। ये साम्राज्यिक विरासत का हिस्सा थे तथा बाद की पीढ़ी के बादशाहों और अन्य लक्षित पाठकों द्वारा इनका संदर्भ दिया जाता था। सर्वाधिक उत्कृष्ट संस्मरणों में से एक बादशाह जहाँगीर का था। मुग़ल वंश का चौथा सम्राट होने तथा कभी भी मध्य एशिया न देखा होने के बावजूद उनके द्वारा अपने पूर्वजों की तुर्क-मंगोल विरासत का निरंतर संदर्भ इन गौरवपूर्ण पूर्वज परम्पराओं के

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

केंद्रीय महत्व को स्पष्ट करता है। ऐसे दावे तत्कालीन समय में वैधानिकता के स्रोत बन गए थे।

दरबारी इतिहासकारों ने संप्रभु-शासक की विजयों और शासन को उसके न्यायप्रिय प्रशासक के रूप में वर्णन द्वारा भी उचित ठहराया, ऐसा शासक जो अपनी प्रजा को पीड़ा और शोषण से बचाएगा। कई बार, दुनिया के विभिन्न क्षेत्रों में जैसे मध्य एशिया में, किसी शासक के शासनकाल में उसके राज्य-क्षेत्र में उसके कृत्यों को धार्मिक आधारों तथा इस्लाम की रक्षा के नाम पर भी उचित ठहराया जाता था। मध्यकालीन भारत में इतिहास-लेखन की परम्परा तथा मुग़लों के अधीन सृजित दरबारी आख्यानों तथा ऐतिहासिक ग्रंथों में मुस्लिम शासन की केन्द्रीयता उनके राजत्व के सिद्धांत को प्रतिबिम्बित करती थी। इन तारीख़नवीसों द्वारा शासक की शख्सियत का बखान करने के लिए प्रयुक्त विभिन्न पदावलियाँ मध्यकालीन राजनीतिक विचार को प्रतिबिम्बित करती हैं।

इस तरह का प्रतिबिम्ब केवल ऐतिहासिक लेखनों और लोकप्रिय साहित्य तक ही सीमित नहीं था। इनकी झलक *इंसान-ए कामिल* जैसी उपाधियों से भी मिलती है। इनकी अभिव्यक्ति दरबार में होने वाले अनुष्ठानों – *फ़रमान, ख़िल्लत* तथा *सिजदा* – के माध्यम से भी मिलती है, इसके साथ ही *छत्र*, सफ़ेद फेल्ट (felt) का बना टेन्ट, हरिताश्म (jade) की वस्तुएँ, स्वर्ण सिंहासन तथा छोटी सी मंजूषा, जिसमें बादशाह की मुहर रखी होती थी तथा जिसे बादशाह के संरक्षणत्व में बने चित्रों में उसके घुटनों के सामने रखा दर्शाया गया है, जैसे प्रतीकों के माध्यम से भी। मध्य एशिया में प्रचलित विचारों तथा राजत्व के मुग़ल विचारों, जिसमें इसके पूर्ववर्ती विचार भी शामिल हैं, की समझ के बीच समानांतर आयामों को चिह्नित करना, वैधानिकता की प्रक्रिया की बेहतर समझ बनाने में सहायक है। मुग़ल बादशाहों द्वारा व्यापक पूर्व-आधुनिक इस्लामी दुनिया में अपनी केंद्रीय स्थिति को घोषित करने के लिए यह संरक्षण बनाए रखा गया था। इस 'संरक्षण (बादशाह) तथा वफ़ादारी (प्रजा)' परिलक्षण ने मुग़ल राज्य की दीर्घजीविता को विश्वसनीयता प्रदान की। इस प्रकार, करिश्माई पूर्वज परंपरा को धारण कर मुग़लों द्वारा उपमहाद्वीप में प्रयुक्त राजत्व के सिद्धांत को पहचान तथा वैधानिकता मिली।

9.7 शब्दावली

***सूबा-ए-गुज़ारा-ए शहज़ादा प्रणाली* (Appanage System)** : अर्द्ध-स्वायत्त सूबाई क्षेत्रों के रूप में राज्य के अधिक्षेत्र को शहज़ादों के बीच बाँटने की चंगेज़ी-तिमूरी परंपरा, जहाँ उन्हें शासन-कौशल, सैन्य बलों को संगठित करने तथा ख़ज़ाने के प्रबंधन का प्रशिक्षण मिलता था शहज़ादों के बीच सूबों के विभाजन की इस व्यवस्था में एक भाई का साम्राज्य पर प्रभुत्व होता था

अतालिक़ : *ख़ान* द्वारा प्रत्येक *ख़ानेत* (प्रांत) में राजस्व संग्रह तथा अन्य प्रशासनिक उद्देश्यों के लिए नियुक्त विशिष्ट प्रतिनिधि या नायब

फ़र्र-ए इज़दी : दैवीय प्रकाश, ऐसा सिद्धांत जिसमें राजसी सत्ता ख़ुदा की नज़रों में प्रतिष्ठित स्थान रखती है। यह दैवीय प्रकाश स्वयं ईश्वर से निकलता है, और इस तरह संप्रभु-सम्राट के हृदय में अपनी प्रजा के प्रति पितृवत प्रेम को पैदा करता है तथा उसमें ईश्वर के प्रति विश्वास का निर्माण करता है। इस सिद्धांत के अनुसार, संप्रभु द्वारा किए गए सभी कृत्य अपने स्वभाव में दैवीय होते हैं तथा उन्हें बिना किसी प्रश्न के स्वीकार किया जाना चाहिए

गुरगान/कुरकान : शाही दामाद

इंसान-ए कामिल : सर्वश्रेष्ठ इंसान

ख़ान/ख़ाक़ान : मध्य एशिया में शासक की एक पदवी। सम्पूर्ण साम्राज्य में *ख़ाक़ान* के नाम से सिक्के ढाले जाते थे तथा उसके

	नाम का ख़ुतबा पढ़ा जाता था
कुरुलताई	मंगोलों की परामर्श सभा
पायबोस	शासक के सम्मुख ज़मीन को चूमना
पीर-ओ-मुर्शिद	सूफी संत (*पीर*) तथा उसके अनुयाइयों (*मुरीद*) के बीच निष्ठापूर्ण बंधन
सद्र	प्रधानमंत्री
साहिब क़िरान	मंगलकारी संयोग का स्वामी
साहिब क़िरान-ए सानी	मंगलकारी संयोग के स्वामी के समान
सिजदा	ख़ुदा के सामने झुकना
सुयूरग़ाल	भू-राजस्व मुक्त अनुदान
सुलह-ए कुल	सार्वभौमिक शांति या सभी सम्प्रदायों के साथ शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व
तरख़ानी	व्यक्तिगत रूप से कर में छूट
तुरा/यासा-ए चंगे़ज़ी	चंगे़ज़ ख़ान द्वारा अपने शासनकाल में प्रतिपादित सूत्रबद्ध क़ानून का समूह जिन्हें बाध्यकारी स्वभाव का माना जाता था
वहदत-उल वुजूद	'सर्वेश्वरवाद' की विचारधारा
ज़मीबोस	दरबारी तहज़ीब तथा अदब के रूप में ज़मीन को चूमना

9.8 बोध प्रश्नों का उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) भाग 9.2 देखें। उन संस्थाओं की चर्चा कीजिए जो समकालीन ईरान तथा मध्य एशिया में अस्तित्व में थी। साथ ही इनमें से कुछ ऐसी संस्थाओं की चर्चा कीजिए जो मुग़ल भारत में भी प्रतिध्वनित होती हैं।

2) भाग 9.2 देखें। आपके उत्तर में निम्नलिखित बिंदु शामिल होने चाहिए:
   - क) तैमूर तथा उसके द्वारा संरक्षित तुर्क-मंगोल परम्पराएँ
   - ख) सफ़ावियों तथा उज़्बेक़ों के अधीन विकासक्रम
   - ग) ऑटोमन साम्राज्य के अंतर्गत सामाजिक परिवर्तन

3) भाग 9.2 देखें। आपके उत्तर में निम्नलिखित बिंदु शामिल होने चाहिए:
   - क) दोनों शासनतंत्रों के अधीन उत्तराधिकार के परम्परागत चंगे़ज़ी-तिमूरी सिद्धांत में परिवर्तन
   - ख) सफ़ावी शासक शाह इस्माइल के अधीन संप्रभु की छवि में परिवर्तन

4) क) शाह अब्बास

5) ग) *इल्तिज़ाम*

6) भाग 9.2 देखें। संस्कृति के उन प्रक्षेत्रों के अतिरिक्त, जहाँ इन साम्राज्यों ने संरक्षण का विस्तार किया था, इस तथ्य को सुस्पष्ट कीजिए कि मुग़ल दरबार में उन कलाकारों को संरक्षण प्रदान

किया गया जो ईरान तथा मध्य एशिया से पलायन कर भारत आए थे, क्योंकि यहाँ संरक्षण प्रदान करने में निरंतरता बनी हुई थी।

बोध प्रश्न-2

1) उप-भाग 9.3.1 देखें। आपके उत्तर में निम्नलिखित बिंदु शामिल होने चाहिए:
   क) *सुयूरग़ालों* का अनुदान
   ख) *तुरा/यासा* का प्रभाव
   ग) मुग़ल राजनीतिक दर्शन में *अख़लाकी* निर्देशों का महत्व
   घ) मुग़लों की मंगोल विरासत के अंग के रूप में सर्वश्रेष्ठ इंसान की संकल्पना

2) उप-भाग 9.3.1 तथा 9.3.2. देखें। *तुरा/यासा* को परिभाषित कीजिए जैसे इसे मध्य एशिया के सन्दर्भ में समझा जाता था। यह भी परीक्षण कीजिए कि किस तरह *तुरा/यासा* की विरासत मुग़लों द्वारा जारी रखी गई।

3) उप-भाग 9.3.2 देखें। बाबर द्वारा *बाबरनामा* में चंगे़ज़ ख़ान की संप्रभुता के दैवीय सिद्धांत की धारणा के संबंध में किए गए उल्लेखों का वर्णन कीजिए।

4) क) *ख़ान-ए आज़म*
   ख) *ख़ाक़ान-ए मुअज़्ज़म*

5) उप-भाग 9.3.2 देखें। आपके उत्तर में मध्य एशिया के इतिहास में *ख़ानों* की संस्था को दिया गया महत्व शामिल होना चाहिए तथा किस प्रकार वे मुस्लिम शासकों के लिए महत्वपूर्ण समझे जाने वाले संप्रभुता के पारम्परिक प्रतीकों, अर्थात् *ख़ुतबे* में नाम की उद्घोषणा तथा सिक्कों पर नाम उद्धृत करना, से किस प्रकार संबंधित थे।

6) उप-भाग 9.3.2 देखें। मुस्लिम शासकों के लिए महत्वपूर्ण समझे जाने वाले संप्रभुता के दो पारम्परिक प्रतीकों को परिभाषित करते हुए, इन संस्थाओं की प्रकृति में विभिन्न शासनों के अधीन आने वाले परिवर्तनों का विश्लेषण कीजिए।

बोध प्रश्न-3

1) उप-भाग 9.4.1 देखें। आपके उत्तर में निम्नलिखित बिंदु शामिल होने चाहिए:
   क) तैमूर की विरासत जैसा उसे बाबर ने उल्लिखित किया है
   ख) तैमूर के अधीन *सूबा-ए गुज़ारा* की व्यवस्था
   ग) बाबर और सूफ़ी औलिया
   घ) वास्तुकला के क्षेत्र में तुर्क-मंगोल परम्परा का प्रभाव

2) उप-भाग 9.4.2 देखें। बादशाह हुमायूँ द्वारा जिन विभिन्न चुनौतियों का सामना किया गया था, उनका उल्लेख कीजिए तथा इन चुनौतियों के संदर्भ में वह किस हद तक मुग़ल राजत्व के सिद्धांत के तत्वों की स्थापना करने में सफल हुआ था।

3) उप-भाग 9.4.3 देखें। बादशाह अकबर द्वारा स्थापित तथा सुदृढ़ीकृत राजत्व के सिद्धांत की व्याख्या कीजिए। साथ ही उसके द्वारा अपनायी गई धार्मिक नीति – जो जड़ता लिए हुए नहीं थी – को समझाइए। इन दो विकासक्रमों के बीच संबंध का विश्लेषण कीजिए।

4) उप-भाग 9.4.3 देखें। आपके उत्तर में निम्नलिखित बिंदु शामिल होने चाहिए:
   क) ईश्वर की प्रतिछाया का सिद्धांत तथा इसका प्रयोग
   ख) अबुल फ़ज़ल का लेखन
   ग) *झरोखा दर्शन* तथा सम्मानसूचक पोशाक/*ख़िल्लत* के समारोह
   घ) *महज़र* की उद्घोषणा

5) उप-भाग 9.4.3 तथा भाग 9.5 देखें। उन व्यवहारों की चर्चा कीजिए जो बाद के शासकों के काल में मुग़ल राजत्व के सिद्धांत के अंग के रूप में जारी रहे।

6) भाग 9.5 देखें। शाही वंश से संबंध रखने के अलावा, मुग़ल राजत्व के सिद्धांत की अन्य प्रमुख तथा सारभूत विशेषताओं की चर्चा कीजिए।

7) भाग 9.5 देखें। मुग़ल राजत्व के सिद्धांत के संबंध में इतिहासकारों के बीच वाद-विवाद की चर्चा कीजिए। अन्य इतिहासकारों के अलावा, जे. एफ़. रिचड्र्स, फ्रांसिस विलियम बकलर तथा मारिया इवा सबटेल्नी के मतों का परीक्षण कीजिए। इसके साथ ही, भारत में मुग़ल शासन के विभिन्न चरणों में राजत्व का सिद्धांत किस तरह क्रमिक रूप से विकसित हुआ था, चर्चा कीजिए।

8) क) ✓ ख) ✓ ग) × घ) ×

9.9 संदर्भ ग्रंथ

आलम, मुज़फ़्फ़र एवं संजय सुब्रह्मण्यम, (संपा.) (1998) *द मुग़ल स्टेट 1526-1750* (नई दिल्लीः ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

अली, एम. अतहर, (1989) 'द इस्लामिक बैकग्राउंड टू इंडियन हिस्ट्रीः एन इंटरप्रेटेशन ऑफ़ द इस्लामिक पास्ट', *जर्नल ऑफ़ द एकोनोमिक एंड सोशल हिस्ट्री ऑफ़ द ओरिएंट*, भाग 32, नं. 3, अक्टूबर, पृ. 335-345.

बल्बनलिलार, लीसा, (2007) 'लॉड्र्ज़ एंड ऑसपीशियस कंजंक्शनः टर्को-मंगोल इम्पीरियल आयडेंटिटी ऑन द सबकोंटिनेंट', *जर्नल ऑफ़ वर्ल्ड हिस्ट्री*, भाग 18, नं. 1, पृ. 1-39.

ख़ान, इक़्तिदार आलम, (1972) 'टर्को-मंगोल थ्योरी ऑफ़ किंगशिप', *मिडिवल इंडिया – अ मिस्लेनी*, भाग-II, अलीगढ़.

ख़ान, इक़्तिदार आलम, (2009) 'ट्रेसिंग सोर्सेज़ ऑफ़ प्रिंसिपल्स ऑफ़ मुग़ल गवर्नेंसः अ क्रिटीक ऑफ़ रीसेंट हिस्टोरियोग्राफ़ी', *सोशल साइंटिस्ट*, भाग 37, नं. 5-6, मई-जून, पृ. 45-54.

मूसवी, शीरीन, (2017) 'अकबर्स एंटेरप्राइज ऑफ़ रिलीजस कंसीलिएशन इन द अर्ली फ़ेज़, 1561-1578: स्पॉन्टेनियस ऑर मोटिवेटेड', *स्टडीज़ इन पीपल्स हिस्ट्री*, भाग 4, नं. 1, पृ. 46-52.

मुखिया, हरबंस, (2004) *द मुग़ल्स ऑफ़ इंडिया* (नई दिल्लीः ब्लैकवेल प्रकाशन).

रिचड्र्स, जे. एफ़., (1984) 'नॉर्म्स ऑफ़ कम्पॉर्टमेंट अमंग इम्पीरियल ऑफ़ीशियल्स', *मोरल कंडक्ट एंड अथॉरिटीः द प्लेस ऑफ़ अदब इन साउथ एशियन इस्लाम*, संपा. बारबरा डी. मेटकाफ (बर्कलेः यूनिवर्सिटी ऑफ़ कैलिफ़ोर्निया प्रेस).

रिचड्र्स, जे. एफ़., (1998) 'द फ़ॉर्म्युलेशन ऑफ़ इम्पीरियल अथॉरिटी अंडर अकबर एंड जहाँगीर', *किंग्शिप एंड अथॉरिटी इन साउथ एशिया*, संपा. जे. एफ़. रिचड्र्स (नई दिल्लीः ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस), पुनःमुद्रित.

त्रिपाठी, राम प्रसाद, (1959), *सम आसपेक्ट्स ऑफ़ मुस्लिम एडमिनिस्ट्रेशन*, द्वितीय संस्करण (इलाहाबादः सेंट्रल बुक डिपो).

9.10 शैक्षणिक वीडियो

सिम्बॉलिक रिप्रज़ेंटेशन ऑफ सॉवरेन्टी इन मुगल इंडिया
https://www.youtube.com/watch?v=Bbr-hSiQbxU

इकाई 10 प्रशासनिक संरचना*

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 केंद्रीय प्रशासन का विकास

- 10.2.1 सम्राट
- 10.2.2 *वकील* और *वजीर*
- 10.2.3 *दीवान-ए कुल*
- 10.2.4 *मीर बख्शी*
- 10.2.5 *मीर सामां*
- 10.2.6 *सद्र-उस सुदूर*

10.3 प्रांतीय प्रशासन

- 10.3.1 प्रांतीय गवर्नर
- 10.3.2 *दीवान*
- 10.3.3 *बख्शी*
- 10.3.4 *दरोगा-ए डाक* और गुप्तचर सेवा

10.4 स्थानीय प्रशासन

- 10.4.1 *सरकार*
- 10.4.2 *परगना* प्रशासन
- 10.4.3 *थाना एवं थानादार*

10.5 नगर, किला और बंदरगाह प्रशासन

- 10.5.1 *कोतवाल*
- 10.5.2 *किलादार*
- 10.5.3 बंदरगाह प्रशासन

10.6 मुगल शासन की प्रकृति

10.7 सारांश

10.8 शब्दावली

10.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.10 संदर्भ ग्रंथ

10.11 शैक्षणिक वीडियो

---

* डॉ. राजीव शर्मा, सेंटर ऑफ एडवांस्ड स्टडी इन हिस्ट्री, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़। यह इकाई हमारे पाठ्यक्रम ई.एच.आई.-04: *भारतः 16वीं सदी से 18वीं सदी के मध्य तक*, खंड 4, इकाई 14 से ली गई है।

10.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप मुगल राज्य व्यवस्था की समग्र कार्यपद्धति की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। इसे पढ़ने के बाद आपः

- मुगल प्रशासनिक ढाँचे के विकास की प्रक्रिया समझ सकेंगे,
- केन्द्रीय स्तर पर प्रमुख प्रशासनिक विभागों का उल्लेख कर सकेंगे,
- मुख्य प्रांतीय पदों, उनके कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वों पर प्रकाश डाल सकेंगे,
- स्थानीय स्तर की प्रशासनिक व्यवस्था और केन्द्रीय सत्ता के साथ उनके संबंधों को रेखांकित कर सकेंगे, और
- नगर, किला और बंदरगाह प्रशासन की कुछ आधारभूत विशेषताओं को जान सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

मुगल प्रशासनिक व्यवस्था का आधारभूत उद्देश्य साम्राज्य के विभिन्न हिस्सों पर नियंत्रण स्थापित करना था ताकि मुगल संप्रभुता को चुनौती देने वाले विरोधी तत्वों को रोका जा सके। आप यह जानेंगे कि मुगल प्रशासन के सामने सबसे बड़ी समस्या यह थी कि मुगल साम्राज्य के प्रत्येक हिस्से में विभिन्न क्षेत्रों के लोग निवास करते थे जिन पर उनके स्थानीय शासकों या स्वायत्त प्रमुखों का काफी प्रभाव था। मुगल राज्य व्यवस्था की यह विशेषता थी कि इसने विद्रोही राजाओं और सरदारों को न केवल प्रशासनिक व्यवस्था में शामिल किया बल्कि उनसे सैन्य सेवाएँ भी प्राप्त की गईं (विस्तृत जानकारी के लिए इस पाठ्यक्रम की **इकाई 13** देखिए)। इस विशाल प्रशासन को बनाए रखने के लिए भू-राजस्व के रूप में ग्रामीण अधिशेष का अधिकतम भाग प्राप्त होना आवश्यक था। मुगल राज्य व्यवस्था में इसे वसूलने पर विशेष ध्यान दिया गया था (विस्तृत जानकारी के लिए इस पाठ्यक्रम की **इकाई 13** देखिए)।

10.2 केंद्रीय प्रशासन का विकास

मुगल साम्राज्य की प्रकृति अखिल भारतीय थी। बाबर और हुमायूँ अपने छोटे से शासनकाल में सैन्य मामलों में उलझे रहने के कारण प्रशासन को व्यवस्थित करने की ओर ध्यान न दे सके।

अकबर के काल में प्रशासनिक व्यवस्था की ओर विशेष ध्यान दिया गया। उसके शासनकाल के अंत तक समुचित और व्यापक विभाग स्थापित हो गए, और उनके शीर्ष अधिकारियों का कार्य भी नियत कर दिया गया। प्रशासनिक अधिकारियों के सार्वजनिक और निजी जीवन से संबंधित आचार संहिता भी स्थापित कर दी गई ताकि वे 'साम्राज्य के मजबूत स्तंभों' के रूप में काम कर सकें।

10.2.1 सम्राट

प्राचीन भारतीय परंपराओं में हमेशा शक्तिशाली राजा की बात की गई है। मुस्लिम न्यायविदों और लेखकों का भी यही मानना था। अतः भारतीय जन समुदाय में राजतंत्र की दैवीय उत्पत्ति के सिद्धांत को आसानी से स्थापित किया जा सकता था। इसलिए इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि मुगलों ने पूरी तड़क-भड़क के साथ *झरोखा दर्शन* को प्रचारित किया, जिसमें सम्राट एक खास समय पर आम जनता को दर्शन देता था। एक किंवदंती थी कि महामहिम् सम्राट के दर्शन मात्र से ही उनकी इच्छाएँ पूरी हो जाएँगी।

शासक की ऐसी लोकप्रिय अवधारणा को देखते हुए यह स्वभाविक था कि मुगल प्रशासन के सभी अधिकारियों की स्थिति और शक्ति सम्राट पर निर्भर होती थी। शासक की व्यक्तिगत पसंद और विचार पर ही उनकी नियुक्ति, पदोन्नति, अवनति और बर्खास्तगी निर्भर करती थी।

10.2.2 *वकील* और *वज़ीर*

कुछ उद्धरणों के अनुसार *वज़ारत* की संस्था (इसे *वकालत* भी कहा जाता है, दोनों शब्दों का पर्याय के रूप में इस्तेमाल होता था) का अस्तित्व अब्बासी खलीफाओं के समय से माना जाता है। दिल्ली

सल्तनत में *वज़ीर* के पास नागरिक और सैनिक दोनों शक्तियाँ थीं। लेकिन बलबन के समय में उनकी शक्ति कम कर दी गईं और सुल्तान ने सैन्य अधिकार *दीवान-ए अर्ज़* को सौंप दिए। जहाँ तक शेरशाह के शासनकाल का प्रश्न है, अफगानों के काल में यह पद महत्वहीन हो गया।

मुगलों के आरंभिक काल में *वज़ीर* की स्थिति पुनः स्थापित हुई। बाबर के *वज़ीर* निज़ामुद्दीन मुहम्मद खलीफा के पास नागरिक के साथ-साथ सैनिक अधिकार भी थे। हुमायूँ के *वज़ीर* हिंदू बेग के पास भी वस्तुतः काफी अधिकार थे।

बैरम खाँ के संरक्षण के काल (1556-1560) में *वकील-वज़ीर* का पद अपने उत्कर्ष पर पहुंच गया। बैरम खाँ ने इस पद पर रहते हुए असीम अधिकार प्राप्त किए। अपने शासनकाल के 8वें वर्ष (1564-1565) में अकबर के *वकील* से वित्तीय अधिकार ले लिए और इन्हें *दीवान-ए कुल* (वित्त मंत्री) नामक नए पदाधिकारी को सौंप दिया गया। वित्तीय अधिकार छीन लिए जाने के कारण *वकील* की शक्ति को गहरा धक्का पहुंचा। *वकील* की शक्ति में कमी आने के बावजूद मुगल अधिकारी तंत्र के पदानुक्रम में उसका स्थान सर्वोच्च रहा।

10.2.3 *दीवान-ए कुल*

हमने अभी पढ़ा कि कैसे राजस्व अधिकार प्रदान कर अकबर ने *दीवान* का पद पुनःस्थापित किया। मुख्य *दीवान* (*दीवान-ए कुल*) पर राजस्व और वित्त का भार सौंपा गया। राजकीय कोष का निरीक्षण और लेखा संबंधी जाँच करना उसका प्राथमिक कार्य था।

वह प्रत्येक विभाग में होने वाले सभी लेन-देन और भुगतानों का व्यक्तिगत तौर पर निरीक्षण करता था। वह प्रांतीय *दीवानों* से प्रत्यक्ष संपर्क रखता था और वे उसकी निगरानी में कार्य करते थे। राजस्व संबंधी सभी सरकारी कागजातों पर उसकी मुहर तथा हस्ताक्षरों का होना अनिवार्य था। साम्राज्य का राजस्व संबंधी (वसूली और व्यय संबंधी) समस्त प्रशासन उसके जिम्मे था। उसकी मुहर के बिना नियुक्ति या पदोन्नति संबंधी कोई नया आदेश जारी नहीं किया जा सकता था। *दीवान* की शक्ति पर नियंत्रण रखने के लिए मुगल सम्राट ने *दीवान* को राज्य की वित्तीय स्थिति का ब्यौरा प्रतिदिन प्रस्तुत करने का आदेश दिया।

साम्राज्य की विभिन्न जरूरतों को ध्यान में रखकर केंद्रीय राजस्व मंत्रालय को कई विभागों में विभक्त कर दिया गया। उदाहरणस्वरूप, *दीवान-ए* ***खालिसा***, *दीवान-ए तन* (नगद वेतन के लिए), *दीवान-ए* ***जागीर***, *दीवान-ए बुयुतात* (राजमहल के मामले), आदि।

उपरोक्त प्रत्येक विभाग पुनः कई भागों में विभाजित थे। प्रत्येक विभाग में सचिव, निरीक्षक और क्लर्क होते थे। *मुस्तौफी* लेखा परीक्षक होता था और मुख्य लेखाधिकारी *मुशरिफ* था। *खज़ानादार* राजकीय कोष की देखभाल करता था।

10.2.4 *मीर बख्शी*

दिल्ली सल्तनत के *मीर अर्ज़* का नाम बदलकर मुगलकाल में *मीर बख्शी* हो गया। *मनसबदारों* की नियुक्ति और वेतन संबंधी कागजात उसी के द्वारा अनुशंसित और अग्रसरित किए जाते थे। वह व्यक्तिगत तौर पर घोड़ों की निशानदेही (*दाग*) का निरीक्षण करता था और सैनिकों की उपस्थिति (*चेहरा*) की जाँच करता था। निरीक्षण के आधार पर ही वेतन का निर्धारण किया जाता था। इसके बाद ही *दीवान* अपने दूसरे कागजात में इसे दर्ज करता था और फिर इसे सम्राट के सामने प्रस्तुत किया जाता था। *मीर बख्शी* सम्राट के समक्ष सैन्य विभाग संबंधी सभी मामले रखता था। *मीर बख्शी* नौकरी पाने के प्रत्याशियों को सम्राट के समक्ष प्रस्तुत करता था। वह प्रांतीय *बख्शियों* और *वकाया नवीसों* से सीधा संपर्क रखता था। वह यात्राओं, सैर-सपाटे, शिकार और युद्ध क्षेत्र, आदि में सम्राट के साथ रहता था। दरबार में *मनसबदारों* के ओहदों के अनुसार उनका स्थान निर्धारित करना उसी का काम था। दरबार की उसकी इस जिम्मेदारी के कारण उसका सम्मान और प्रभाव काफी बढ़ गया था।

केंद्रीय स्तर पर *मीर बख्शी* की सहायता के लिए अनेक *बख्शी* थे। प्रथम तीन को पहला दूसरा और तीसरा *बख्शी* कहा जाता था। जबकि *अहदियों* (सम्राट के विशेष सैनिक) के लिए अलग *बख्शी* और महल के कर्मचारियों के लिए अलग *बख्शी* (*बख्शी-ए शागिर्द पेशा*) नियुक्त था।

10.2.5 *मीर सामां*

मीर सामां राजकीय *कारखानों* का प्रभारी होता था। उसे *खान-ए सामां* के नाम से भी जाना जाता था। राजकीय महल के सामानों की खरीद और उनके भंडारण की जिम्मेदारी भी उसी की थी और वह इन मामलों का मुख्य कार्यकारी अधिकारी था। इसके अतिरिक्त युद्ध के अस्त्रों से लेकर विलास की वस्तुओं तक के उत्पादन का निरीक्षण करना भी उसका उत्तरदायित्व था। वह सीधे सम्राट के अधीन था, परंतु धनराशि आवंटित करवाने और लेखा के परीक्षण के लिए उसे *दीवान* से संपर्क करना पड़ता था।

मीर सामां के अधीन कई अधिकारी कार्य करते थे, इसमें *दीवान-ए बुयुतात* और *तहवीलदार* (कोषाध्यक्ष तथा भंडारक) प्रमुख थे।

10.2.6 *सद्र-उस सुदूर*

सद्र-उस सुदूर धार्मिक मामलों से संबंधित विभाग का अध्यक्ष था। उसका मुख्य कार्य *शरियत* के कानून का संरक्षण था। नकद दान (*वजीफा*) और भूमि अनुदान (*सुयूरग़ाल, इनाम, मदद-ए माश*) का वितरण करना भी उसके जिम्मे था।

आरंभ में न्यायिक विभाग के अध्यक्ष के रूप में वह *काज़ियों* और *मुफ्तियों* की नियुक्ति का पर्यवेक्षण किया करता था। शाहजहाँ के शासनकाल तक *काज़ी* और *सद्र-उस सुदूर* का पद एक में मिला हुआ था और एक ही व्यक्ति दोनों विभागों का प्रभारी होता था। परंतु औरंगजेब के शासनकाल में मुख्य *काज़ी* (*काज़ी-उल कुज्जात*) और *सद्र-उस सुदूर* का पद अलग कर दिया गया। इससे *सद्र* की शक्ति में भारी कमी आई। अब वह *सद्र* के रूप में भत्तों की निगरानी और दान तथा अनुदान की देखभाल करता था। वह यह भी देखता था कि अनुदान सही व्यक्ति को दिए गए हैं और उनका उपयोग सही तरीके से हो रहा है या नहीं। वह अनुदान के लिए प्राप्त आवेदनों (नये और नवीनीकरण के लिए प्राप्त) की जाँच करता था और स्वीकृति के लिए सम्राट के सामने प्रस्तुत करता था। दान-पुण्य को वितरित कराने का कार्य भी उसके माध्यम से होता था।

काज़ी-उल कुज़्ज़ात

मुख्य *काज़ी* को *काज़ी-उल कुज़्ज़ात* के नाम से जाना जाता था। वह न्यायिक विभाग का प्रमुख होता था (हमने पहले ही बता दिया है कि औरंगजेब के शासनकाल के पहले *सद्र-उस सुदूर* इस कार्य को करता था)। *दीवानी* और *फौजदारी* दोनों मामलों में *शरियत* को लागू करना उसकी प्रमुख जिम्मेदारी थी।

मुख्य *काज़ी* होने के नाते *सूबा, सरकार, परगना* और शहरों के स्तर पर *काज़ियों* की नियुक्ति का कार्य उसके जिम्मे था। सेना के लिए भी एक अलग *काज़ी* होता था।

काज़ी-उल कुज़्ज़ात के अतिरिक्त *मीर अद्ल* दूसरा महत्वपूर्ण न्यायिक पदाधिकारी था। अबुल फज़्ल ज़ोर देकर कहता है कि *काज़ी* के साथ-साथ *मीर अद्ल* का होना जरूरी था, क्योंकि *काज़ी* फैसला सुनाता था और *मीर अद्ल* इन फैसलों को लागू करता था।

मुहतसिब (जन-नैतिकता का निरीक्षक) का मुख्य कार्य आम जनता के बीच नैतिकता के नियमों का पालन करना था। उसका कार्य शराब पीने, भांग खाने और अन्य नशीली वस्तुओं के उपयोग, जुआ, आदि को रोकना और नियंत्रित करना था। इसके अतिरिक्त वह माप-तोल के परीक्षण, मूल्य नियंत्रण, आदि की भी देखरेख करता था।

बोध प्रश्न-1

1) मुगलों के अधीनी *वकील* की स्थिति पर विचार-विमर्श कीजिए।

....

....

....

2) *मीर बख्शी* के कार्य क्या थे?

....

....

....

3) निम्नलिखित का मिलान कीजिएः

i)	*तहवीलदार*	क)	खजांची
ii)	*मुहतसिब*	ख)	राजस्व विभाग का प्रभारी
iii)	*मीद अद्ल*	ग)	कोषाध्यक्ष तथा भंडारक
iv)	*फोतेदार*	घ)	जन नैतिकता का निरीक्षक
v)	*दीवान-ए कुल*	ड.)	न्यायलय के आदेश का कार्यरूप देने वाला

10.3 प्रांतीय प्रशासन

1580 में अकबर ने अपने साम्राज्य को 12 *सूबों* (प्रांतों) में विभक्त कियाः इलाहाबाद, आगरा, अवध, अजमेर, अहमदाबाद (गुजरात), बिहार, बंगाल, (ओडिसा सहित), दिल्ली, काबुल, लाहौर, मुल्तान और मालवा। बाद में 3 *सूबे* और जोड़े गएः बरार, खानदेश और अहमदनगर। प्रत्येक *सूबा* कई *सरकारों* में विभक्त किया गया और उन्हें *परगने* और *महल* में पुनः विभक्त किया गया। शाहजहाँ के शासनकाल में *चकला* नाम से एक अन्य प्रशासनिक इकाई सामने आई। यह कई *परगनों* को मिलाकर बनता था।

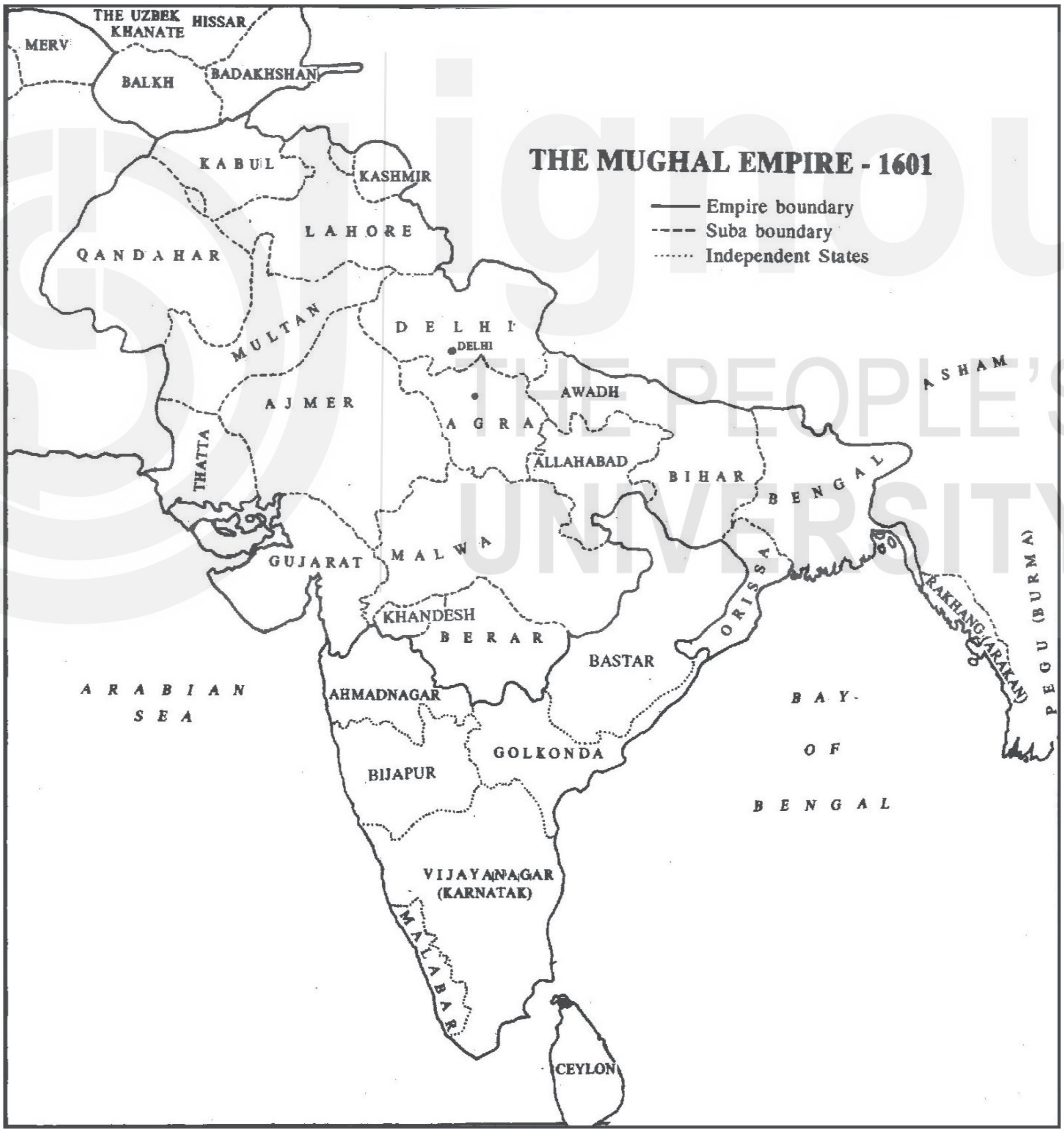

मानचित्र 10.1 : मुगल साम्राज्य के प्रशासनिक प्रखंड (सूबे), 1601
साभारः हबीब, इरफान, *एन एटलस ऑफ द मुगल एम्पायर*, 1982, नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
स्रोत : ई.एच.आई.-04: *भारतः 16वीं से 18वीं शताब्दी के मध्य तक,* खंड 2, इकाई 6, पृ. 27

10.3.1 प्रांतीय गवर्नर

सूबे के गवर्नर (*सूबेदार*) की नियुक्ति खुद सम्राट किया करता था। आमतौर पर *सूबेदार* का कार्यकाल तीन वर्षों का होता था। जनता और सेना के कल्याण की देखरेख का कार्य *सूबेदार* का एक महत्वपूर्ण दायित्व था। *सूबे* की आम कानून व्यवस्था की देखरेख करना भी उसके जिम्मे था। कृषि, व्यापार और वाणिज्य को प्रोत्साहित करने वाला *सूबेदार* सफल माना जाता था। उससे यह उम्मीद की जाती थी कि वह *सरायों*, जलाशयों, आदि के निर्माण और बाग लगाने जैसे जनकल्याण कार्य करे ताकि राज्य के राजस्व में वृद्धि हो सके।

10.3.2 *दीवान*

प्रांतीय *दीवान* की नियुक्ति सम्राट करता था। वह एक स्वतंत्र अधिकारी था और सीधे केंद्र के प्रति जवाबदेह था। वह *सूबे* के राजस्व विभाग का प्रमुख था।

प्रांतीय *दीवान सूबे* में की गई राजस्व वसूली का निरीक्षण करता था। *सूबे* के अधिकारियों और कर्मचारियों के वेतन, आदि का पूरा हिसाब-किताब और अन्य व्यय संबंधी विवरण भी रखता था।

अपने *सूबों* में कृषि-क्षेत्र में बढ़ोतरी के लिए प्रयास करना *दीवान* का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व था। आवश्यकता पड़ने पर उसका कार्यालय कृषकों को अग्रिम कर्ज (*तकावी*) दिया करता था।

दीवान के पास एक *रोज़नामचा* (प्रतिदिन की बही पुस्तिका) होता था जिसमें राजस्व अधिकारियों और *ज़मींदारों* द्वारा राजकीय खजाने में जमा की गई रकम दर्ज की जाती थी। उसके अधीन कई क्लर्क कार्य करते थे।

इस प्रकार *दीवान* को *सूबेदार* से अलग करके और *दीवान* के हाथों में वित्तीय मामले को देकर मुगल शासक *सूबेदारों* की शक्ति पर अंकुश लगाने में सक्षम हुए।

10.3.3 *बख्शी*

सम्राट द्वारा *मीर बख्शी* की अनुशंसा पर *बख्शी* की नियुक्ति की जाती थी। वह केंद्र में कार्य कर रहे *मीर बख्शी* के समान प्रांतों में सेना की देखरेख करता था। वह *सूबे* में *मनसबदारों* द्वारा रखे गए घोड़ों और सैनिकों की जाँच और निरीक्षण करता था। वह *मनसबदारों* और सैनिकों का वेतन-पत्र जारी करता था। मृत *मनसबदारों* की सूची तैयार करना भी उसका काम था। परंतु *परगना* का *वकाय नवीस* (सूचनाएँ भेजने वाला) सीधे प्रांतीय *दीवान* तक सूचना पहुँचाता था। अक्सर उसका पद *वकाया निगार* के साथ मिला दिया जाता था। इस रूप से प्रांत की घटनाओं की सूचना केंद्र तक पहुँचाने की जिम्मेदारी भी उसी की हो जाती थी। अपने कार्य को सुचारू रूप से करने के लिए वह अपने प्रतिनिधियों को *परगने* और अन्य महत्वपूर्ण कार्यालयों में नियुक्त करता था।

10.3.4 *दरोगा-ए डाक और गुप्तचर सेवा*

एक विशाल साम्राज्य को शासित करने के लिए संचार सेवा का विकास आवश्यक होता है। यह कार्यभार एक अलग विभाग को सौंपा गया था। साम्राज्य के दूर-दराज इलाकों में निर्देश भेजने के लिए राजकीय डाक सेवा स्थापित की गई थी। इसी के माध्यम से सूचनाएँ भी प्राप्त होती थीं। इस उद्देश्य के लिए प्रत्येक *सूबा* मुख्यालय में *दरोगा-ए डाक* की नियुक्ति की गई। उसका कार्य तेज धावकों (*मेवड़ा*) की मदद से शाही दरबार का पत्र पहुँचाना था। यह इन पत्रों को विभिन्न स्थानों तक पहुँचाने का कार्य करते थे। इस कार्य के लिए पूरे साम्राज्य में *डाक चौकियों* की स्थापना की गई, जहाँ *धावक* रहा करते थे, जो एक *चौकी* से दूसरी *चौकी* तक *डाक* ले जाते थे। तीव्र संचार के लिए घोड़ों और नौकाओं का भी उपयोग किया जाता था।

सम्राट तक सीधी सूचना पहुँचाने के लिए प्रांतीय स्तर पर *वकाया नवीस* और *वकाया निगारों* की नियुक्ति की जाती थी। इसके अलावा सम्राट तक गुप्त सूचनाएँ पहुँचाने के लिए *सवाने निगार* की नियुक्ति होती थी। इन गुप्तचरों की कई रिपोर्टें उपलब्ध हैं। यह दस्तावेज इस काल के इतिहास के महत्वपूर्ण स्रोत हैं।

इस प्रकार मुगलों ने प्रत्येक विभाग और संस्था को एक दूसरे से पृथक और स्वतंत्र रखकर अपने प्रांतीय पदाधिकारियों पर नियंत्रण रखने में सफलता पाई। इसके अतिरिक्त सम्राट द्वारा प्रत्येक *सूबे* में

बार-बार दौरा करने, लगभग तीन साल की अवधि में पदाधिकारियों के स्थानांतरण, आदि से मुगल शासक पदाधिकारियों पर नियंत्रण रख सके। परंतु विद्रोह की संभावना बराबर बनी रहती थी, अतः बराबर चौकसी के लिए संगठित गुप्तचर सेवा स्थापित की गई।

10.4 स्थानीय प्रशासन

इस भाग में हम *सरकार*, *परगना* और *मौजा* (गाँव) स्तर के प्रशासन की कार्यपद्धति की जानकारी प्राप्त करेंगे।

10.4.1 *सरकार*

सरकार स्तर पर *फौजदार* और *अमलगुजार* दो प्रमुख अधिकारी थे।

फौजदार

वह *सरकार* का कार्यकारी प्रधान होता था। परंतु उसका प्रभाव क्षेत्र जरा जटिल लगता है। उसे केवल *सरकार* स्तर पर ही नियुक्त नहीं किया जाता था बल्कि कभी-कभी एक *सरकार* के भीतर कई *फौजदार* होते थे। कभी-कभी दो *सरकारों* में एक ही *फौजदार* की नियुक्ति होती थी। इसके साथ-साथ *चकलों* में भी विभिन्न *फौजदारों* की नियुक्ति का हवाला मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि उसका मुख्य कार्य विद्रोहों का दमन और कानून व्यवस्था की देखरेख करना था। क्षेत्र की जरूरत के अनुसार उसके कार्यक्षेत्र का निर्धारण होता था।

उसका मुख्य कार्य अपने कार्यक्षेत्र में रह रहे लोगों की जान और माल की सुरक्षा करना था। उसे अपने क्षेत्र में आने-जाने वाले व्यापारियों को सुरक्षा भी प्रदान करनी पड़ती थी। क्षेत्र के मुख्य कार्यकारी की हैसियत से *फौजदार* को विद्रोही *ज़मींदारों* पर भी नजर रखनी पड़ती थी। कुछ विशेष परिस्थितियों में उसे राजस्व वसूली में *अमलगुज़ार* की भी सहायता करनी पड़ती थी।

अमलगुज़ार

आमिल या *अमलगुज़ार* सर्वप्रमुख राजस्व समाहर्ता था। उसका मुख्य कार्य अपने मातहत पदाधिकारियों के माध्यम से राजस्व वसूली का निर्धारण और निरीक्षण करना था। एक अच्छे *आमिल* से यह आशा की जाती थी कि वह अपने क्षेत्र में कृषि का विस्तार करे और किसानों को बिना ज़ोर-ज़बर्दस्ती के राजस्व देने के लिए प्रेरित करे। सभी प्रकार के लेखा की देखभाल भी उसके जिम्मे थी। वह प्रतिदिन की वसूली और व्यय का ब्यौरा प्रांतीय *दीवान* को भेजता था। लेकिन शाहजहाँ के काल में राजस्व निर्धारण से संबंधित अधिकार *आमिल/अमलगुज़ार* से ले लिया गया और राजस्व निर्धारण के लिए एक पृथक अधिकारी, *अमीन*, की नियुक्ति की गई (विस्तृत जानकारी के लिए **भाग 13.4** देखें)।

10.4.2 *परगना* प्रशासन

सरकार के नीचे की प्रशासनिक इकाई *परगना* थी। *परगना* का कार्यकारी अधिकारी *शिक़दार* था और राजस्व वसूली में *आमिल* की सहायता करता था। *परगना* स्तर पर *आमिल* राजस्व की देखभाल करता था। उसकी जिम्मेदारी सरकार स्तर के *अमलगुज़ार* के समकक्ष थी। अपने क्षेत्र में संबंधित भूमि का लेखा-जोखा *कानूनगो* अपने पास रखता था। वह *परगना* में होने वाली विभिन्न फसलों का भी ब्यौरा रखता था।

गाँव प्रशासन की सबसे निचली इकाई था। *मुक़द्दम* गाँव का मुखिया था जबकि *पटवारी* ग्राम स्तर पर राजस्व का लेखा-जोखा रखता था। मुगलों के शासनकाल में ग्रामीण प्रशासन का स्वरूप शेरशाह के शासन के सामान ही रहा।

10.4.3 *थाना* एवं *थानादार*

थाना एक ऐसी जगह थी जहाँ कानून और व्यवस्था की देखरेख के लिए सेना रहती थी। उन्हें सेना के लिए खानपान की वस्तुओं का भी इंतजाम करना पड़ता था। यह *थाने* मुख्य रूप से अशांत इलाकों और शहर के आसपास स्थापित किए गए थे। इसके प्रमुख को *थानादार* कहते थे। उसे *सूबेदार* और *दीवान* की अनुशंसा पर नियुक्त किया जाता था। वह आमतौर पर उस क्षेत्र के *फौजदार* के अधीन कार्य करता था।

बोध प्रश्न-2

1) मुगल प्रशासनिक व्यवस्था के क्षेत्रीय उप-विभाजन का विवरण दीजिए।

....

....

....

2) मुगल *फौजदार* की भूमिका और कार्यों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

3) निम्नलिखित में से प्रत्येक पर दो पंक्तियाँ लिखिएः

आमिल..

....

बख्शी..

....

वकाया नवीस...

....

10.5 नगर, किला और बंदरगाह प्रशासन

नगरों, किलों और बंदरगाहों के प्रशासन के लिए मुगलों ने अलग प्रशासनिक तंत्र की स्थापना की थी।

10.5.1 *कोतवाल*

शहरी केंद्रों के लिए सम्राट *कोतवाल* की नियुक्ति करता था जिसका मुख्य कार्य शहर में रहने वाले लोगों के जान और माल की रक्षा करना था। उसकी तुलना आज के शहरों और नगरों के पुलिस अधिकारियों से की जा सकती है। *कोतवाल* शहर के बाहर जाने और अंदर आने वाले लोगों का ब्यौरा भी रखता था। बाहरी व्यक्तियों को शहर के अंदर आने और बाहर जाने के लिए उससे अनुमति लेनी पड़ती थी। *कोतवाल* को इस बात का भी ध्यान रखना पड़ता था कि उसके इलाके में अवैध शराब न बन रही हो। वह व्यापारियों और दुकानदारों द्वारा प्रयुक्त माप और तोल के निरीक्षक के रूप में भी कार्य करता था।

10.5.2 *किलादार*

देश के विभिन्न क्षेत्रों में मुगल साम्राज्य के पास बड़ी संख्या में *किले* थे। इनमें से कई सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण क्षेत्रों में बने हुए थे। प्रत्येक किला एक छोटा शहर होता था, जिसमें विशाल सेना रहती थी। प्रत्येक *किले* का एक प्रधान अधिकारी होता था, जिसे *किलादार* कहा जाता था। *किलादार* के रूप में नियुक्त व्यक्तियों पर सरसरी तौर पर निगाह डालने से यह स्पष्ट होता है कि आमतौर पर बड़े ओहदे वाले *मनसबदारों* को ही यह पद दिया जाता था। वह किले के आम प्रशासन और *किलादार* को दी गई *जागीर* में पड़ने वाले क्षेत्र का प्रभारी होता था। कभी-कभी *किलादारों* को उस क्षेत्र के *फौजदार* की भूमिका भी निभानी पड़ती थी।

10.5.3 बंदरगाह प्रशासन

मुगल शासक बंदरगाहों के आर्थिक महत्व को समझते थे क्योंकि ये गहन वाणिज्यिक गतिविधियों के केंद्र थे। बंदरगाह प्रशासन प्रांतीय प्राधिकार से स्वतंत्र होता था। बंदरगाह के गर्वनरों को *मुतसद्दी* कहते थे। इनकी नियुक्ति सीधे सम्राट करता था। कभी-कभी *मुतसद्दी* के पद की नीलामी होती थी और सबसे अधिक बोली लगाने वाले को यह पद दिया जाता था। *मुतसद्दी* व्यापारियों से कर वसूल करता था और सीमा शुल्क कार्यालय की देखरेख करता था। वह बंदरगाह की टकसाल का भी निरीक्षण करता था। *शाहबंदर* उसका मातहत था जो मुख्य रूप से सीमा शुल्क कार्यालय की देखरेख करता था।

10.6 मुगल शासन की प्रकृति

कुछ इतिहासकारों (इरफान हबीब, अतहर अली, आदि) का मानना है कि मुगल प्रशासनिक ढाँचा अधिक केंद्रीकृत था। यह केंद्रीकरण भू-राजस्व व्यवस्था की निपुण कार्यपद्धति, *मनसब* और *जागीर* व्यवस्था तथा समान मुद्रा प्रचलन, आदि के रूप में परिलक्षित होता है। हालांकि स्टीफेन पी. ब्लेक और जे. एफ. रिचड्र्स यह मानते हैं कि मुगल शासन में केंद्रीकरण की प्रवृत्ति थी, परंतु उनका विचार है कि मुगल साम्राज्य 'पितृसत्तात्मक-नौकरशाही' (patrimonial-bureaucratic) थी। उनके अनुसार, सब कुछ शाही राजघराने और विशाल नौकरशाही के आसपास केंद्रित था। स्त्रूसैंड के अनुसार केंद्रीकृत होने के बावजूद प्रशासनिक ढाँचा अपने सीमावर्ती क्षेत्रों में कम केंद्रीकृत था। चेतन सिंह भी इस दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं। उनका मानना है कि 17वीं शताब्दी में भी मुगल साम्राज्य बहुत केंद्रीकृत नहीं था। उनके अनुसार *जागीरदारी* व्यवस्था की कुशल कार्यपद्धति के माध्यम से केंद्रीकृत ढाँचे को बनाए रखना बहुत कारगर साबित नहीं हुआ। उनके अनुसार *जागीरों* के स्थानांतरण उतने प्रभावी नहीं थे, जितने परिलक्षित होते हैं, बल्कि सीमांत प्रदेशों के प्रभावी तत्वों को केंद्र की नीतियों को प्रभावित करने में सफलता मिल जाती थी।

मुगल साम्राज्य व्यवहार में किस सीमा तक केंद्रीकृत था, यह एक विवाद का विषय है लेकिन सैद्धांतिक रूप से मुगल प्रशासनिक ढांचा अति केंद्रीकृत अधिकारीय तंत्र था। सम्राट सभी शक्तियों का स्रोत था और अधिकारी तंत्र *बंदा-ए दरगाह* (दरबार के दास) से ज्यादा कुछ नहीं था।

केंद्रीय विभागों के प्रमुखों के पास अपार शक्ति होने के बावजूद वह न तो एक दूसरे के कार्य-क्षेत्र में हस्तक्षेप और अनाधिकार प्रवेश कर सकते थे और न ही निरंकुश शक्ति ग्रहण कर सकते थे। निरीक्षण और संतुलन के जरिए मुगल शासक किसी भी मंत्री या पदाधिकारी को असीमित शक्ति प्रदान प्राप्त करने का अवसर नहीं देते थे।

बोध प्रश्न-3

1) सही/गलत कथन का पता लगाइए:
   i) *परगना* स्तर पर *कोतवाल* मुख्य पुलिस अधिकारी था। ( )
   ii) *मुतसद्दी* का पद कभी-कभी नीलाम भी किया जाता था। ( )
   iii) मुगलों के अधीन बंदरगाह, प्रशासन की अलग इकाई थी। ( )
   iv) टकसाल *शाहबंदर* के अधीन थी। ( )

2) निम्नलिखित अधिकारियों के कार्यों की व्याख्या कीजिए।
   कोतवाल ....
   ....
   मुतसद्दी ....
   ....
   किलादार ....
   ....

10.7 सारांश

मुगलों ने एक 'अति केंद्रीकृत नौकरशाही' व्यवस्था स्थापित करने की चेष्टा की जो 'प्रत्यक्ष' नियंत्रण पर आधारित थी। सम्राट में सभी शक्तियाँ निहित थीं। अपनी सहायता के लिए उसने केंद्रीय मंत्रियों का एक विशाल तंत्र निर्मित किया जिन्हें सम्राट स्वयं नियुक्त करता था। इसी प्रकार उन्हें नियंत्रण में रखने के लिए उसने निरीक्षण और संतुलन का सिद्धांत अपनाया।

प्रभावी प्रशासन के लिए साम्राज्य को *सूबों* (प्रांतों), *सरकारों*, *परगनों* और गाँवों में विभक्त किया गया था। केंद्र की भांति ही प्रांतीय प्रशासन की व्यवस्था की जाती थी, जिसके लिए अलग से अधिकारियों को नियुक्त किया जाता था। यहाँ भी किसी अधिकारी को सर्वोच्च अधिकार प्राप्त नहीं थे। *सूबेदार*

और *दीवान* दोनों स्वतंत्र रूप से कार्य करते थे और वे केवल केंद्र के प्रति जिम्मेदार थे। नगरों और बंदरगाह शहरों का अलग प्रशासन-तंत्र था। नगरों में *कोतवाल* और बंदरगाह शहरों में *मुतसद्दी* आमतौर पर कानून और व्यवस्था की देख-रेख करते थे। मुगल प्रशासन में *किलों* का बहुत महत्व था जहाँ *किलादारों* की नियुक्ति की जाती थी। स्थानीय स्तर पर *परगना* सर्वप्रमुख प्रशासनिक इकाई था जबकि गाँव प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थी।

10.8 शब्दावली

अमीन राजस्व का आकलन करने वाला

जागीर *मनसबदारों* /कुलीनों को नकद वेतन के बदले किया जाने वाला भू-अनुदान

खालिसा 'शाही सुरक्षित भूमि' जिसका राजस्व सुल्तान के खजाने में जमा होता था

मुकद्दम ग्राम प्रधान

पटवारी गाँव का लेखाकार

शरियत इस्लामिक कानून

10.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) देखें उप-भाग 10.2.2

2) देखें उप-भाग 10.2.4

3) i) ग ii) द iii) ड. iv) क v) ख

बोध प्रश्न-2

1) देखें भाग 10.3

2. देखें उप-भाग 10.4.1

3. देखें उप-भाग 10.3.3, 10.3.4, 10.4.2

बोध प्रश्न-3

1) i) × ii) ✓ iii) ✓ iv) ×

2) देखें भाग 10.5

10.10 संदर्भ ग्रंथ

हसन, इब्न, (1967) *द सेंट्रल स्ट्रक्चर ऑफ द मुगल एंपायर एंड इट्स प्रैक्टिकल वर्किंग अपटू द इयर 1657* (लाहौरः ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस).

रे, अनिरुद्ध, (1984) *सम आसपैक्टस ऑफ मुगल एडमिनिस्ट्रेशन* (लुधियानाः कल्याणी पब्लिशर्स).

सरन, पी., (1988) *द प्रोविंशियल गवर्नमेंट ऑफ द मुगल्स, 1526-1658* (जयपुरः सुनीता पब्लिकेशंस).

त्रिपाठी, आर.पी., (1959) *सम आसपैक्टस ऑफ मुगल एडमिनिस्ट्रेशन* (इलाहाबादः सेंट्रल बुक डिपो).

10.11 शैक्षणिक वीडियो

द मुगल एडमिनिस्ट्रेशन
https://www.youtube.com/watch?v=dUom7d1E9Kk

मुगल एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया
https://www.youtube.com/watch?v=jQaZHCawQ

इकाई 11 प्रशासनिक संस्थाएँ: *मनसब* और *जागीर**

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 *मनसब* व्यवस्था

11.2.1 दोहरा पदः *ज़ात* और *सवार*

11.2.2 *मनसबदारों* की तीन श्रेणियाँ

11.2.3 *मनसबदारों* की नियुक्ति और पदोन्नति

11.2.4 सेना का रख-रखाव और भुगतान

11.2.5 अधिग्रहण (Escheat) व्यवस्था

11.3 *मनसबदारों* का संघटन

11.4 *जागीर* व्यवस्था

11.4.1 आरंभिक चरण

11.4.2 *जागीर* व्यवस्था का संगठन

11.4.3 *जागीरों* के विभिन्न प्रकार

11.4.4 *जागीरों* का प्रबंधन

11.5 सारांश

11.6 शब्दावली

11.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.8 संदर्भ ग्रंथ

11.9 शैक्षणिक वीडियो

11.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम मुगल प्रशासन के दो मुख्य अवयवों *मनसब* तथा *जागीर* व्यवस्थाओं पर विचार-विमर्श करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- अकबर के अधीन *मनसब* व्यवस्था की आधारभूत विशेषताओं को जान सकेंगे,
- सत्रहवीं शताब्दी के दौरान *मनसबदारी* में हुए परिवर्तनों पर प्रकाश डाल सकेंगे,
- *जागीरदारी* व्यवस्था की कार्यपद्धति और मुख्य विशेषताओं को रेखांकित कर सकेंगे, और
- *जागीरों* के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख कर सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

भारत में मुगलों के अधीन *मनसब* और *जागीर* व्यवस्था अचानक सामने नहीं आ गयी, समय के साथ-साथ उनका धीरे-धीरे विकास हुआ। ये संस्थाएँ पश्चिम एशिया से ग्रहीत की गयीं और भारत की तत्कालीन आवश्यकताओं के परिप्रेक्ष्य में उनमें बदलाव लाया गया।

* प्रो. अनिरूद्ध रे, डिपार्टमेंट ऑफ हिस्ट्री एंड कल्चर, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कोलकात्ता। यह इकाई हमारे पूर्ववर्ती पाठ्यक्रम ई.एच.आई.-4: *भारतः 16वीं से 18वीं शताब्दी के मध्य तक,* खंड 4, इकाई 15 से ली गई है।

मनसबदार मुगल नौकरशाही का अंगभूत हिस्सा था और जैसा पर्सिवेल स्पेयर का कहना है कि यह 'संभ्रांत के भीतर एक संभ्रांत' के रूप में विकसित हुआ। न्यायालय को छोड़कर सभी सरकारी विभागों में उनकी नियुक्ति हुई। *वज़ीर, बख्शी, फौजदार, सूबेदार,* आदि महत्वपूर्ण पद उन्हें दिए जाते थे। हम *जागीर* व्यवस्था पर भी विचार-विमर्श करेंगे।

11.2 *मनसब* व्यवस्था

मनसब शब्द का अर्थ स्थान या पद है और इस प्रकार यह मुगलों की *मनसब* व्यवस्था में ओहदा या पद को इंगित करता है।

बाबर के समय में पदाधिकारियों के लिए *मनसबदार* शब्दावली का उपयोग नहीं होता था, इसके स्थान पर एक दूसरी शब्दावली *वजहदार* का उपयोग होता था। यह बाबर के बाद मुगलों के अधीन विकसित *मनसब* व्यवस्था से कुछ मामलों में अलग था।

अकबर द्वारा अपने सैनिक और नागरिक अधिकारियों को उनकी योग्यता या राज्य के लिए की गयी सेवाओं के आधार पर *मनसब* प्रदान की गईं। अधिकारियों का स्तर निर्धारित करने और अपने सैनिकों को वर्गीकृत करने के लिए वह मोटे तौर पर चंगेज खाँ के सिद्धांतों से प्रेरित था। जैसा कि हम देख चुके हैं कि चंगेज खाँ की सेना दशमलव व्यवस्था के आधार पर संगठित थी। सबसे छोटी इकाई में दस घुड़सवार शामिल होते थे, उसके बाद एक सौ, एक हजार और इसी प्रकार संख्या बढ़ती जाती थी। अबुल फज़ल बताते हैं कि अकबर ने *मनसबदारों* की 66 श्रेणियाँ बनाई थीं जिसमें 10 घुड़सवारों से लेकर 10,000 घुड़सवारों तक के सेनानायक शामिल थे। पर अबुल फज़ल ने केवल 33 श्रेणियों का ही उल्लेख किया है।

मनसब तीन चीजों को लक्षित करता थाः

क) इससे इसके धारक (*मनसबदार*) की पदानुक्रम में अवस्थिति निर्धारित होती थी।

ख) इससे धारक का वेतन निश्चित होता था।

ग) इससे धारक द्वारा एक खास संख्या में सेना, घोड़े और हथियार रखे जाने का भी निर्धारण होता था।

11.2.1 दोहरा पदः *ज़ात* और *सवार*

आरंभ में *मनसबदार* का पद, व्यक्तिगत वेतन, और उसकी सेना का आकार एक संख्या द्वारा ही घोषित होता था। इस स्थिति में अगर कोई व्यक्ति 500 की *मनसब* प्राप्त करता था तो उसे 500 सैनिक रखने पड़ते थे और उसे इस सेना के रख-रखाव के लिए भत्ता दिया जाता था। इसके अतिरिक्त, अनुसूची के अनुसार उन्हें व्यक्तिगत वेतन प्राप्त होता था और अपने पद के अनुरूप उन्हें कुछ खास जिम्मेदारियाँ भी निभानी पड़ती थीं। कुछ समय बाद *मनसबदार* का पद एक की जगह दो संख्याओं *ज़ात* और *सवार* द्वारा घोषित किया जाने लगा। यह शुरुआत संभवतः 1595-96 में हुई।

पहली संख्या (*ज़ात*) से *मनसबदार* का व्यक्तिगत वेतन (***तलब-ए खासा***) और पदानुक्रम में उसकी हैसियत और स्थान निर्धारित होता था। दूसरी संख्या (*सवार*) से *मनसबदार* द्वारा रखे जाने वाले घोड़ों और घुड़सवारों की संख्या तय होती थी और उसकी सेना (***ताबीनान***) के रख-रखाव के लिए देय राशि तय की जाती थी।

इस दोहरे पद की भूमिका को लेकर कुछ विवाद है। विलियम इरविन का मानना है कि दोहरे पद का अर्थ यह है कि *मनसबदारों* को अपने व्यक्तिगत वेतन से सेना के दो दलों का रख-रखाव करना पड़ता था। अब्दुल अज़ीज़ के विचार आधुनिक विचार से मेल खाते हैं, उनका मानना है कि *ज़ात* वेतन शुद्धतः व्यक्तिगत वेतन था और सेना के रख-रखाव से इसका कोई वास्ता नहीं था। उन्होंने इरविन के सिद्धांत का खंडन करते हुए कहा है कि इसमें केवल एक सैन्य दल का रख-रखाव करना होता था, दो का नहीं। अतहर अली ने स्थिति को पूरी तरह सही परिप्रेक्ष्य में रखा, उनका कहना है कि पहली संख्या (*ज़ात*) से राज्य के पदाधिकारियों के पदानुक्रम में *मनसबदारों* की अवस्थिति और *मनसबदारों* का वेतन

तय होता था। दूसरे पद (*सवार*) से *मनसबदार* द्वारा रखे जाने वाले घोड़ों और घुड़सवारों की संख्या तय होती थी।

11.2.2 *मनसबदारों* की तीन श्रेणियाँ

1595-96 में *मनसबदारों* को तीन समूहों में वर्गीकृत किया गयाः

क) जिनके घुड़सवारों (*सवार*) की संख्या *ज़ात* के बराबर होती थी प्रथम श्रेणी के *मनसबदार* माने जाते थे,

ख) जिनके पास *ज़ात* की संख्या के आधे या आधे से अधिक घुड़सवार होते थे। वे द्वितीय श्रेणी के, तथा

ग) जिनके घुड़सवारों की संख्या उनकी *ज़ात* संख्या के आधे से कम होती थी तीसरी श्रेणी के *मनसबदार* होते थे।

सवार पद *ज़ात* के बराबर या उससे कम होता था। यहाँ तक कि अगर *सवार* पद बड़ा भी होता था तो पदानुक्रम में *मनसबदार* की स्थिति पर फर्क नहीं पड़ता था। उदाहरण के लिए, 4000 *ज़ात* और 2000 *सवार* (संक्षेप में 4000/2000) ओहदे का *मनसबदार* 3000/3000 के *मनसबदार* से पद में वरिष्ठ होगा, बाद वाले *मनसबदार* के पास घुड़सवारों की संख्या अधिक है पर इससे पहले वाले *मनसबदार* के पदानुक्रम पर फर्क नहीं पड़ेगा क्योंकि उसका *ज़ात* पद बड़ा है।

परन्तु *मनसबदार* जब कठिन क्षेत्र में विद्रोहियों के बीच कार्यरत होता था तो कई बार इस नियम का पालन नहीं भी किया जाता था। इन मामलों में राज्य *ज़ात* पद को बिना बदले हुए *सवार* पद बढ़ा देता था। निश्चित रूप से यह एक लचीली व्यवस्था थी और इसमें परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन होता रहता था। इस प्रकार आधारभूत ढाँचे को बदले बिना इसमें सुधार व परिवर्तन होते रहते थे। सशर्त पद (***मशरूत***) का चलन इसी प्रकार का सुधार था, जिसमें कुछ समय के लिए *सवार* पद बढ़ा दिया जाता था। यह कार्य संकटकालीन स्थिति में किया जाता था। जिसके तहत राज्य के खर्च पर अधिक घुड़सवारों को भर्ती करने की अनुमति प्रदान की जाती थी।

जहाँगीर ने अपने शासन में *दो अस्पा सिह अस्पा* व्यवस्था लागू कर एक नया परिवर्तन किया। जहाँगीर के शासन के दसवें वर्ष में यह पद सबसे पहले महाबत खाँ को प्राप्त हुआ। इसके अनुसार, *मनसबदार* का आधा या पूरा *सवार* पद *दो अस्पा सिह अस्पा* बना दिया गया।

उदाहरण के लिए, यदि एक *मनसबदार* के पास 4000 *ज़ात*/4000 *सवार* का *मनसब* हो तो उसे *हुमा दो अस्पा सिह अस्पा* (सभी दो-तीन घोड़े) प्रदान किया जा सकता था। इस मामले में मूल *सवार* पद को नज़रअंदाज कर *मनसबदार* को *दो अस्पा सिह अस्पा* या दोगनी संख्या (यहाँ 4000+4000 = 8000) में सैनिक और घोड़े रखने की अनुमति दी जा सकती थी। फिर यदि 4000 *ज़ात*/4000 *सवार* का पद हो जिसमें से मात्र 2000 *दो अस्पा सिह अस्पा* हो, इसका मतलब यह होता था कि मूल 4000 *सवार* पद में से केवल 2000 साधारण या ***बरावर्दी*** सैनिक होंगे और 2000 *दो अस्पा सिह अस्पा* के जरिए इस संख्या का दोगुना अर्थात् 4000 सैनिक प्राप्त होंगे। इस प्रकार कुल घुड़सवारों की संख्या 6000 होगी।

दो अस्पा सिह अस्पा व्यवस्था अपनाने के पीछे क्या कारण हो सकते थे? इस मामले में हमारे स्रोत कोई मदद नहीं करते, पर इस संदर्भ में हम कुछ अनुमान लगा सकते हैंः सम्राट बनने के बाद जहाँगीर अपने विश्वासपात्र कुलीनों की पदोन्नति करना चाहता था और उन्हें सैनिक दृष्टि से मजबूत करना चाहता था, परन्तु इसमें कुछ व्यावहारिक समस्याएँ थीं। जैसा कि हमने **उप-भाग 11.2.1** में पढ़ा कि आमतौर पर *सवार* पद *ज़ात* पद से बड़ा नहीं हो सकता था। इस स्थिति में, *सवार* पद बढ़ाने के लिए *ज़ात* पद को भी बढ़ाना पड़ता। *ज़ात* पद में बढ़ोतरी करने से व्यक्तिगत वेतन के रूप में अतिरिक्त भुगतान करना पड़ता और इससे राजकोष पर बोझ बढ़ता। इसके अलावा पदानुक्रम में कुछ कुलीनों को आगे बढ़ाना पड़ता जिससे अन्य कुलीनों में ईर्ष्या का भाव पैदा होता।

वस्तुतः *दो अस्पा सिह अस्पा* ऐसा तरीका था जिसके माध्यम से *ज़ात* पद या *मनसब* पदानुक्रम को छेड़े बिना अतिरिक्त *सवार* पद प्रदान किया जा सकता था। इसके माध्यम से *ज़ात* पद में बढ़ोतरी न करने से राज्य के खर्च में भी बचत होती थी।

11.2.3 *मनसबदारों* की नियुक्ति और पदोन्नति

आमतौर पर *मीर बख्शी* सम्राट के सामने प्रत्याशियों को उपस्थित करता था जिन्हें सम्राट स्वयं नियुक्त करता था। नियुक्ति के लिए प्रतिष्ठित कुलीनों और प्रांतों के गवर्नरों की अनुशंसाओं को आमतौर पर स्वीकार किया जाता था। नियुक्ति के लिए बृहत प्रक्रिया अपनायी जाती थी जिसमें *दीवान*, *बख्शी* और अन्य लोग शामिल होते थे, इसके बाद सम्राट के पास नियुक्ति के लिए नाम भेजा जाता था। नियुक्ति के बाद *वज़ीर* की मुहर लगा *फरमान* जारी किया जाता था। पदोन्नति के मामले में भी यही प्रक्रिया अपनायी जाती थी।

मनसब प्रदान करना सम्राट का विशेषाधिकार था। वह किसी भी व्यक्ति को *मनसबदार* के रूप में नियुक्त कर सकता था। चीन के समान यहाँ किसी लिखित परीक्षा की व्यवस्था नहीं थी। आमतौर पर कुछ नियमों का पालन किया जाता था। मुगल सम्राटों के शासन कालों में नियुक्त *मनसबदारों* का सर्वेक्षण करने पर पता चलता है कि अन्य की तुलना में कुछ समूहों को वरीयता दी जाती थी।

पहले से *मनसबदार* के रूप में कार्य कर रहे व्यक्तियों के पुत्रों और नजदीकी रिश्तेदारों को प्राथमिकता दी जाती थी। इस समूह को ***खानाज़ाद*** के नाम से जाना जाता था।

इसके बाद दूसरे राज्यों में बड़े पदों पर कार्यरत लोगों को वरीयता दी जाती थी। ऐसे लोगों में उज़बेक और सफावी साम्राज्यों और दक्खन राज्यों से आने वाले प्रमुख थे। इसमें ईरानी, तूरानी, इराकी और खुरासानी शामिल थे। मुगल *मनसब* का आकर्षण इतना जबरदस्त था कि 1636 में बीजापुर के आदिल शाह ने मुगल सम्राट से अनुरोध किया था कि उसके कुलीनों के बीच से *मनसबदार* न नियुक्त किए जाएँ।

स्वायत्त राज्यों के राजाओं का एक अन्य समूह था जिन्हें नियुक्ति और पदोन्नति में भी प्राथमिकता दी गयी। इस श्रेणी में लाभ मुख्य रूप से राजपूत राजाओं को मिला।

आमतौर पर कार्यकुशलता और वंश के आधार पर पदोन्नति की जाती थी। औरंगजेब के शासनकाल के अंतिम वर्षों में मानुची ने लिखा है कि 'हज़ारी या एक हज़ार का वेतन पाने के लिए काफी इंतज़ार और काफी मेहनत करनी पड़ती थी। सम्राट इसे प्रदान करने में काफी मितव्ययिता से काम करता था और यह पद उन्हीं को दिया जाता था जो अपनी सेवा और कार्यकुशलता के बल पर इसे प्राप्त करने की योग्यता रखते थे। अगर किसी को इस पद के समकक्ष वेतन दिया जाता था तो वे उसे ***उमरा*** या *अमीर* की पदवी भी देते, जिसका अर्थ कुलीन था'। लेकिन व्यावहारिक तौर पर पदोन्नति में प्रजातीय आधार की महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। अटल निष्ठा को भी विशेष महत्व दिया जाता था।

बोध प्रश्न-1

1) *ज़ात* और *सवार* पद को परिभाषित कीजिए।

....

....

....

2) *मनसबदारों* की तीन श्रेणियाँ क्या थीं?

....

....

....

11.2.4 सेना का रख-रखाव और भुगतान

मनसबदारों को अपनी सेना का नियमित निरीक्षण और शारीरिक सत्यापन कराना पड़ता था। यह कार्य *मीर बख्शी* का विभाग संपन्न करता था। इसके लिए विशेष कार्य प्रणाली अपनायी जाती थी। इसे *दाग-ओ-चेहरा* के नाम से जाना जाता था। जब कोई कुलीन अपने घोड़ों को प्रस्तुत करता था तो उन घोड़ों को एक मुहर (*दाग*) द्वारा खास तरीके से चिन्हित कर दिया जाता था ताकि दूसरे कुलीनों के घोड़ों से उन्हें अलग किया जा सके। सैनिकों का शारीरिक ब्यौरा और पहचान चिह्न (*चेहरा*) भी दर्ज

किया जाता था। इस प्रकार एक ही घोड़े या सैनिक को दोबारा निरीक्षण के लिए प्रस्तुत करने की संभावना काफी कम हो जाती थी। इसका सख्ती से पालन होता था। कई ऐसे मामलों की भी जानकारी मिलती है जिसमें निश्चित संख्या में सेना न रखने के कारण पदावनति भी कर दी जाती थी। अब्दुल हमीद लाहौरी ने अपनी पुस्तक *बादशाहनामा* में लिखा है कि शाहजहाँ के शासनकाल में अगर एक *मनसबदार* अपनी *जागीर* में ही कार्यभार संभाल रहा होता था तो उसे अपने *सवार* पद की एक तिहाई सेना जुटानी पड़ती थी। *जागीर* से बाहर कार्यरत रहने की स्थिति में उसे एक चौथाई सेना जुटानी पड़ती थी। बल्ख और समरकंद में कार्यरत रहने पर यह अनुपात 1/5 हो जाता था।

ज़ात पद के आधार पर वेतन निश्चित होता था, पर इनके बीच कोई गणितीय या आनुपातिक संबंध नहीं था। दूसरे शब्दों में, वेतन एक ही अनुपात में ज्यादा या कम नहीं होता था।

नीचे दी गयी तालिका में अकबर के शासनकाल में *ज़ात* पद के लिए प्रति माह वेतन का नमूना प्रस्तुत किया गया है (कृपया ध्यान रखिए कि अकबर के शासनकाल में 5000 से ऊपर का *ज़ात* पद केवल राजकुमारों को दिया जाता था। अकबर के शासनकाल के अंतिम वर्षों में राजा मान सिंह अकेला ऐसा कुलीन था जिसे 7000 *ज़ात* का पद प्राप्त था)।

ज़ात पद का वेतन

ज़ात पद	श्रेणी-I (रुपये)	श्रेणी-II (रुपये)	श्रेणी-III (रुपये)
7000	45,000	-	-
5000	30,000	29,000	28,000
4000	22,000	21,800	21,600
3000	17,000	16,800	16,700
2000	12,000	11,900	11,800
1000	8,200	8,100	8,000

सवार पद की संख्या कुछ भी हो, प्रत्येक सैनिक के वेतन का कुल योग ही *सवार* पद का वेतन होता था। सैनिकों को दिया जाने वाला वेतन निश्चित और सभी जगह एक प्रकार का था। अकबर के शासनकाल में कई बातों से वेतन दर निश्चित होती थी, जैसे प्रति घुड़सवार घोड़ों की संख्या (*दाग* के लिए प्रस्तुत), घोड़ों की नस्ल, आदि। यह दर 25 रुपये से लेकर 15 रुपये प्रतिमाह के बीच निर्धारित की जाती थी।

मासिक वेतन (Month Scale)

आमतौर पर *मनसबदारों* को राजस्व आवंटन (*जागीर*) के जरिए भुगतान किया जाता था। इसमें सबसे बड़ी समस्या यह थी कि एक वर्ष में *जागीर* की अनुमानित आय (*जमा*) के आधार पर आकलन किया जाता था। यह पाया जाता था कि वास्तविक राजस्व वसूली (*हासिल*) अनुमानित आय से हमेशा कम होती थी। इस स्थिति में मासिक वेतन की पद्धति से *मनसबदारों* को वेतन तय किया जाता था। उदाहरण के लिए, अगर *जागीर* की वास्तविक आय *जमा* की आधी होती थी तो इसे *शशमाहा* (छमाही) कहते थे। अगर आय एक चौथाई होती थी तो इसे *सिहमाहा* (तिमाही) माना जाता था। नगद भुगतान में भी मासिक वेतन पद्धति लागू होती थी।

निर्धारित वेतन से कटौती का भी प्रावधान था। सबसे ज्यादा कटौती दक्खनियों से की जाती थी जिनके वेतन का एक चौथाई (*चौथाई*) हिस्सा काट लिया जाता था। इसके अतिरिक्त सम्राट की मवेशियों के चारे के खर्चे के लिए ***खुराक दव्वाब*** नामक कटौती भी की जाती थी। नकद वेतन प्राप्त करने वाले से एक रुपये में दो *दाम* (*दोदामी*) काट लिया जाता था। इसके अलावा विभिन्न कारणों से जुर्माना भी वसूला जाता था। वेतन में इस प्रकार की कटौतियों से कुलीनों का वेतन निश्चित रूप से कम हो जाता था।

साम्राज्य के कुल राजस्व स्रोतों का 80 प्रतिशत मात्र 1,571 *मनसबदारों* द्वारा उपयोग में लाया जाता था। इससे पता चलता है कि *मनसबदार* कितने शक्तिशाली थे।

11.2.5 अधिग्रहण (Escheat) व्यवस्था

कई समकालीन विवरणों में (खासकर यूरोपीय यात्रियों के) इस प्रथा का जिक्र मिलता है कि कुलीन की मृत्यु के बाद सम्राट उसकी संपदा अधिगृहीत कर लेता था। इसे अधिग्रहण (*ज़ब्त*) के नाम से जाना जाता था। इसका कारण था कि अक्सर कुलीन राज्य से कर्ज लिया करते थे, जिनका उनकी मृत्यु तक भुगतान नहीं हो पाता था। कुलीनों की संपत्ति के अधिग्रहण और राज्य की माँग (*मुतालबा*) में समायोजन तथा बची हुई संपत्ति का उसके उत्तराधिकारियों में बंटवारे का काम *खान-ए सामां* (देखिए **इकाई 10**) किया करता था। कभी-कभी सम्राट स्वयं, इस्लामी उत्तराधिकार कानून की परवाह न करते हुए संपत्ति का बंटवारा अपनी इच्छानुसार उत्तराधिकारियों के बीच कर देता था। ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकांश मामलों में सम्राट की इच्छा ही सर्वोपरि होती थी। कभी-कभी राज्य पूरी संपत्ति की *जब्ती* पर जोर देता था। 1666 में औरंगजेब ने *फरमान* जारी किया कि उत्तराधिकारविहीन कुलीन की मृत्यु के बाद उसकी सारी संपत्ति राज्य कोष में जमा करवानी होगी। 1691 के *फरमान* द्वारा इसकी पुष्टि की गयी जिसमें अधिकारियों को उन कुलीनों की संपत्ति जब्त न करने का आदेश दिया गया जिनके उत्तराधिकारी राज्य सेवा में कार्यरत थे क्योंकि उनसे *मुतालबा* के भुगतान के लिए कहा जा सकता था।

11.3 *मनसबदारों* का संघटन

इकाई 12 में हम शासकीय वर्ग के प्रजातीय संघटन के बारे में चर्चा करेंगे। यहाँ हम काफी संक्षेप में उसके बारे में पुनः दोहराएंगे। सैद्धांतिक रूप में *मनसबदारी* का द्वार सबके लिए खुला हुआ था, परन्तु व्यावहारिक तौर पर मुगल सम्राट व्यक्ति के वंश को काफी महत्व देते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि *खानज़ादों* (*मनसबदारों* के सेवारत संबंधी या उत्तराधिकारी) को प्राथमिकता मिलती थी। औरंगजेब के शासनकाल में 1000 और उसके ऊपर वाले 575 *मनसबदारों* में से 272 (लगभग 47 प्रतिशत) *खानज़ाद* थे। *खानज़ादों* के अतिरिक्त *ज़मींदारों* (स्वायत्त सरदारों) को भी *मनसबदार* नियुक्त किया जाता था। 1707 में 575 *मनसबदारों* में 8 प्रतिशत *ज़मींदार* थे। मुगलों ने *मनसबदारी* में ईरानी, चग़ताई, उज़बेकों के साथ-साथ दक्खनियों का भी स्वागत किया। कुछ प्रजातीय समूहों की स्थिति काफी मजबूत थी। इनमें तूरानी (मध्य एशियाई), ईरानी, अफगान, भारतीय मुसलमान (*शेखज़ादे*), राजपूत, मराठा और दक्खनी प्रमुख हैं। इनमें से अंतिम दो समूहों की नियुक्ति औरंगजेब के शासनकाल में बड़े पैमाने पर हुई थी। ये नियुक्तियाँ फौजी कारणों से प्रेरित थीं।

बोध प्रश्न-2

1) मासिक वेतन से क्या तात्पर्य था?

....

....

....

2) *दो अस्पा सिह अस्पा* व्यवस्था क्यों अपनायी गयी?

....

....

....

3) अधिग्रहण व्यवस्था (escheat) से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

11.4 *जागीर* व्यवस्था

दिल्ली सल्तनत में प्रदान किए गए राजस्व आवंटन को *इक्ता* और इसके प्राप्तकर्ता को *इक्तादार* के नाम से जाना जाता था (विस्तृत व्याख्या के लिए देखें हमारा पाठ्यक्रम **बी एच आई सी-107,**

इकाई 4)। कृषकों से अधिशेष वसूलने और कुलीनों के बीच इसे वितरित करने के लिए यह व्यवस्था बनाई गई थी। इसके अंतर्गत प्राप्तकर्ता को अपने क्षेत्र के प्रशासन की भी देखरेख करनी पड़ती थी।

मुगल सम्राटों ने भी यही व्यवस्था अपनाई। नगद वेतन के स्थान पर ये भू-राजस्व आवंटित किये जाते थे। आमतौर पर आवंटित क्षेत्र को *जागीर* और इसके प्राप्तकर्ता को *जागीरदार* कहा जाता था। कभी-कभी *इक्ता/इक्तादार* और *तुयूल/तुयूलदार* जैसी पदावलियों का भी उपयोग किया जाता था। लेकिन इन पदावलियों का प्रयोग काफी कम किया जाता था। यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि *जागीर* व्यवस्था में भूमि का आवंटन नहीं होता था, बल्कि भूमि/क्षेत्र से प्राप्त आय/राजस्व *जागीरदारों* को दी जाती थी। समयानुसार इस व्यवस्था का विकास हुआ और पूरी तरह स्थापित होने के पहले इसमें कई परिवर्तन किये गये। हालांकि आधारभूत ढाँचा अकबर के शासनकाल में विकसित हुआ था। आइए, पहले हम *जागीर* व्यवस्था के आरंभिक रूप की चर्चा करें।

11.4.1 आरंभिक चरण

अपनी जीत के बाद बाबर ने भूतपूर्व अफगान सरदारों को पुनः स्थापित किया तथा जीते गए क्षेत्र का लगभग एक तिहाई से ज्यादा हिस्सा उन्हें आवंटित किया। इस प्रकार के कार्यभार को *वजह* (*वजह* का अर्थ पुरस्कार होता है) और प्राप्तकर्ता को *वजहदार* के रूप में जाना गया। क्षेत्र के कुल राजस्व का एक हिस्सा *वजह* के रूप में आवंटित किया गया। शेष राजस्व को *खालिसा* का हिस्सा माना गया। *ज़मींदारों* को अपने ही इलाके में पुनःस्थापित किया गया परन्तु जीते गये अन्य इलाकों में बाबर ने *हाकिमों* (गवर्नरों) को नियुक्त किया। कदाचित् हुमायूँ के शासनकाल में भी यह प्रथा कायम रही।

11.4.2 *जागीर* व्यवस्था का संगठन

अकबर के शासनकाल में सभी क्षेत्रों को मोटे तौर पर *खालिसा* और *जागीर* में विभक्त किया गया था। पहले का राजस्व राजकीय कोष को जाता था जबकि *जागीरदारों* को उनके पद के अनुसार नकद वेतन के बदले *जागीर* प्रदान की जाती थी। कुछ *मनसबदारों* को नकद वेतन मिलता था और उन्हें *नकदी* के रूप में जाना जाता था। कुछ को *जागीर* और *नकद* दोनों रूपों में भुगतान किया जाता था। राज्य का अधिकांश क्षेत्र *मनसबदारों* को उनके पद के अनुसार आवंटित किया जाता था। विभिन्न क्षेत्रों में अनुमानित राजस्व को *जमा* या *जमादामी* कहते थे, क्योंकि इसका *दाम* के रूप में आकलन होता था (एक छोटा ताँबे का सिक्का, आनुपातिक तौर पर चाँदी के एक रूपये का 1/40 वाँ भाग)। *जमा* में भू-राजस्व, अंतर्देशीय पारगमन शुल्क, बंदरगाह सीमा शुल्क और अन्य कर जो *सायर जिहात* के नाम से जाने जाते थे, शामिल होते थे। वास्तविक राजस्व वसूली के लिए राजस्व अधिकारी *हासिल* शब्द का इस्तेमाल करते थे। *जमा* और *हासिल* दो शब्दों को आप ठीक तरह से समझ लें क्योंकि इसका बार-बार ज़िक्र आएगा। राजस्व अधिकारी *पैबाकी* नामक एक अन्य शब्द का भी इस्तेमाल करते थे। यह उन इलाकों के लिए प्रयुक्त किया जाता था जिन्हें आवंटन के लिए सुरक्षित रखा जाता था, जब वह किसी *मनसबदार* को प्रदान नहीं किये जाते थे, उन्हें *पैबाकी* कहा जाता था।

अकबर के शासनकाल के 31वें वर्ष में दिल्ली, अवध और इलाहाबाद में *खालिसा* की *जमा* कुल राजस्व का 5 प्रतिशत थी। जहाँगीर के शासनकाल में कुल क्षेत्र का 9/10वाँ हिस्सा *जागीर* के रूप में आवंटित था और केवल 1/10 *खालिसा* के लिए उपलब्ध था। *जागीर* और *खालिसा* का अनुपात हमेशा बदलता रहा। शाहजहाँ के शासनकाल में यह बढ़कर 1/11 हो गया और उसके शासनकाल के बीसवें वर्ष में यह लगभग 1/7वाँ हिस्सा था। यही प्रवृत्ति आगे के शासनकाल में भी कायम रही, औरंगजेब के शासनकाल के दसवें वर्ष में *खालिसा* की *जमा* (अनुमानित आय) कुल राजस्व का लगभग 1/5वाँ हिस्सा थी। हालांकि औरंगजेब के शासनकाल के उत्तरार्द्ध में *मनसबदारों* की संख्या में वृद्धि होने से *जागीरों* के दावेदारों में वृद्धि के कारण *खालिसा* पर दबाव ज्यादा बढ़ गया।

प्रशासनिक कारणों से *जागीरदारों* का एक *जागीर* से दूसरी *जागीर* में स्थानांतरण *जागीर* व्यवस्था की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेशता थी। इन स्थानांतरणों से *जागीरदारों* के स्थानीय स्तर पर अपना प्रभाव बढ़ाने और जड़ें जमाने के प्रयास पर नियंत्रण रखा जा सका। इसके साथ-साथ इस प्रथा से एक घाटा यह हुआ कि अपने इलाके के विकास के लिए *जागीरदार* कोई दीर्घकालीन योजना बनाने में रुचि नहीं रखते थे। कम से कम समय में ज्यादा से ज्यादा राजस्व वसूल करना ही उनका उद्देश्य रह गया था।

11.4.3 *जागीरों* के विभिन्न प्रकार

आमतौर पर चार प्रकार के राजस्व आवंटन किए जाते थे:

क) वेतन के रूप में दी गयी *जागीर* को *जागीर-ए तनख्वाह* के रूप में जाना जाता था।

ख) किसी व्यक्ति को दी गयी सशर्त *जागीर* को *मशरूत जागीर* कहा जाता था।

ग) पद और कार्य से रहित *जागीरों* को इनाम *जागीर* कहा जाता था, और

घ) *ज़मींदारों* और स्वायत्त शासकों को जब उनके अपने क्षेत्र *जागीर* के रूप में दिए जाते थे तो उनको *वतन जागीर* कहते थे। जहाँगीर के शासनकाल में मुसलमान कुलीनों को *वतन जागीर* से मिलती-जुलती *जागीरें* दी गयीं, इन्हें *अल-तमगा* के नाम से जाना जाता था।

तनख्वाह जागीर का हर तीन-चार साल पर स्थानांतरण होता था। *वतन जागीर* आनुवांशिक और अस्थानांतरणीय होती थी। कभी-कभी *वतन जागीर* को कुछ समय के लिए *खालिसा* में भी परिवर्तित किया जा सकता था। 1679 में औरंगजेब ने जोधपुर के मामले में ऐसा ही किया था। जब किसी *ज़मींदार* या स्थानीय सरदार को *मनसबदार* बनाया जाता था तो उसे *वतन जागीर* के अतिरिक्त *तनख्वाह जागीर* भी दी जाती थी। यह उस स्थिति में होता था जब उसका वेतन उसकी *वतन जागीर* की आय से अधिक होता था। महाराजा जसवंत सिंह को मारवाड़ में *वतन जागीर* और हिसार में *जागीर-ए तनख्वाह* प्रदान की गई थी।

11.4.4 *जागीरों* का प्रबंधन

जागीर को राजकीय नियमों के अनुरूप केवल प्राधिकृत राजस्व (*माल वाजिब*) वसूलने का ही अधिकार था। वह अपने *आमिल* (*अमलगुजार*), *फोतेदार* (कोषाध्यक्ष) जैसे पदाधिकारियों (*कारकूनों*) की नियुक्ति करता था, जो उसके लिए काम करते थे।

राजकीय पदाधिकारी *जागीरदारों* पर नजर रखा करते थे। *सूबे* के *दीवान* से यह आशा की जाती थी कि वह *जागीरदारों* के शोषण से किसानों की रक्षा करें। अकबर के शासनकाल के बीसवें वर्ष से प्रत्येक प्रांत में *आमिल* नामक अधिकारी की नियुक्ति की गयी। उससे यह अपेक्षा की जाती थी कि वह इस पर नजर रखे कि *जागीरदार* नियमों के अनुरूप राजस्व वसूल करें, संकट की स्थिति में अक्सर *फौजदार* राजस्व वसूल करने में *जागीरदारों* की मदद करते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि औरंगजेब के शासनकाल में बड़े *जागीरदारों* को *फौजदारी* अधिकार भी सौंप दिए गए थे।

बोध प्रश्न-3

1) *जागीरों* के विभिन्न प्रकारों पर संक्षिप्त में लिखिए।

....

....

....

2) *जागीरदारों* का स्थानांतरण क्यों किया जाता था?

....

....

....

11.5 सारांश

मनसबदारी और *जागीरदारी* मुगल साम्राज्य की दो प्रमुख संस्थाएँ थीं। नागरिक और सैनिक दोनों तरह के प्रशासन में इनकी भूमिका महत्वपूर्ण थी। केन्द्रीकृत प्रशासनिक व्यवस्था के साथ-साथ बड़ी फौज खड़ी करने के लिए यह व्यवस्था विकसित की गयी। और उनकी बड़ी फौज की सहायता से साम्राज्य का विस्तार किया जाता था और कार्यकुशलता से इसे संचालित किया जाता था। *मनसब* व्यवस्था की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार थीं:

- *मनसबदारों* को *ज़ात* और *सवार* का दोहरा पद प्राप्त होता था। *ज़ात* से प्रशासनिक पदानुक्रम में अधिकारी की हैसियत का पता चलता था और इससे उनका व्यक्तिगत वेतन भी निर्धारित होता था। *सवार* उनके द्वारा रखी जाने वाली सैन्य टुकड़ी को इंगित करता था।
- *ज़ात* और *सवार* संख्या के अनुपात के आधार पर *मनसबदारों* को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जाता था।
- *मनसबदारों* के वेतन और उनके द्वारा सेना के रख-रखाव के लिए निश्चित नियम निर्धारित किए गए थे। इन नियमों में आवश्यकतानुसार समय-समय पर परिवर्तन होते रहे।

भू-राजस्व व्यवस्था के प्रबंध के लिए समस्त भूमि को *जागीर* और *खालिसा* में विभक्त कर दिया गया था। *खालिसा* से प्राप्त राजस्व राजकीय कोष तथा *जागीर* से प्राप्त राजस्व *मनसबदारों* को प्राप्त होता था।

मनसबदारों को *जागीरों* के आवंटन द्वारा भुगतान किया जाता था। एक संस्था के रूप में *जागीर* का उपयोग किसानों से अधिशेष वसूल करने के लिए किया गया। इसके साथ-साथ इस व्यवस्था से कुलीन शासकीय वर्ग के बीच राजस्व स्रोतों का बंटवारा भी किया गया। चार प्रकार की *जागीरों* में वतन *जागीर* इस दृष्टि से काफी प्रभावी सिद्ध हुईं कि इसके माध्यम से भारतीय राजाओं को मुगल शासकीय वर्ग में सम्मिलित किया जा सका।

11.6 शब्दावली

बरावर्दी	अकबर के शासनकाल में सेना के रख-रखाव के लिए *मनसबदारों* को दिए जाने वाले अग्रिम वेतन को *बरावर्दी* कहते थे। जहाँगीर के शासनकाल से सेना के रख-रखाव के लिए कुलीनों को दिए जाने वाले नियमित भुगतान के लिए इसका उपयोग किया जाने लगा
हासिल	वास्तविक राजस्व
जमा	अनुमानित आय
खानाज़ाद	कुलीन के पद पर पहले से कार्य कर रहे व्यक्तियों के पुत्र और नजदीकी संबंधी
खालिसा	'शाही'('सुरक्षित') भूमि जिसका राजस्व सुल्तान के खजाने में जमा होता था
खुराक-ए दव्वाब	मवेशियों के लिए चारा-भत्ता
मशरूत	कुलीनों को दिया जाने वाला सशर्त पद
तलब-ए खासा	कुलीनों का निजी वेतन
ताबीनान	कुलीनों द्वारा रखी गयी सेना
उमरा	*अमीर* का बहुवचन अर्थात् कुलीन
वजहदार	*इक्ता*-धारक

11.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) *ज़ात मनसबदार* के व्यक्तिगत वेतन का द्योतक था जबकि *सवार* उनके द्वारा रखी गयी सेना की ओर इशारा करता था। देखिए उप-भाग 11.2.1
2) *ज़ात* और *सवार* पद के आधार पर *मनसबदारों* को तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया था। देखें उप-भाग 11.2.2

बोध प्रश्न-2

1) *मनसबदार* की अनुमानित आय और वास्तविक आय (*मनसबदार* द्वारा वसूला गया राजस्व) के अंतर को पाटने के लिए मासिक वेतन की व्यवस्था की गयी थी। देखें उप-भाग 11.2.4

2) *ज़ात* पद में परिवर्तन किए बिना *मनसबदारों* के *सवार* पद में वृद्धि करने के लिए यह व्यवस्था की गयी थी। देखिए उप-भाग 11.2.4

3) अधिग्रहण के सिद्धांत के द्वारा मुगल शासक मृत कुलीनों की संपदा ज़ब्त कर लेते थे। विस्तार के लिए देखिए उप-भाग 11.2.5

बोध प्रश्न-3

1) देखें उप-भाग 11.4.3 जहाँ चार प्रकार की *जागीरों* पर चर्चा की गई है

2) *जागीरदारों* के पद और वेतनों को समायोजित करने के लिए इनका स्थानांतरण किया जाता था। इसके अलावा इन्हें इसके जरिए अपने क्षेत्रों में जड़ जमाने से भी रोका जाता था। देखें उप-भाग 11.4.2

11.8 संदर्भ ग्रंथ

अली, अतहर, (1968) *मुगल नोबिलिटी अंडर औरंगज़ेब* (बॉम्बे: एशिया पब्लिशिंग हाउस).

डे, यू. एन., (1970) *मुगल गवर्मेंट, 1556-1707* (नई दिल्ली: कुमार ब्रदर्स).

रे, अनिरूद्ध, (1984) *सम आस्पैक्ट्स ऑफ मुगल एडमिनिस्ट्रेशन* (कलकता: कल्याणी पब्लिशर्स).

रेचौधरी, तपन एवं इरफान हबीब, (1982) *द न्यू कैम्ब्रिज इकॉनामिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया,* भाग I (नई दिल्ली: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस).

सरकार, जगदीश नारायण, (1984) *मुगल पॉलिटी* (दिल्ली: इदारात-ए अदबियात-ए दिल्ली).

शिवराज, बालकृष्ण, (2008) *जागीरदार्स इन द मुगल एम्पायर डयूरिंग द रेन ऑफ अकबर* (नई दिल्ली: मनोहर)

11.9 शैक्षणिक वीडियो

मनसबदारी सिस्टम-I
https://www.youtube.com/watch?v=kpQX7Ke8nAQ

मनसबदारी सिस्टम-II
https://www.youtube.com/watch?v=TqbJCUJi_Ak

जागीरदारी सिस्टम पार्ट-I
https://www.youtube.com/watch?v=Gggszz3I4bY

जागीरदारी सिस्टम पार्ट-II
https://www.youtube.com/watch?v=AhqLVUGSsUY

इकाई 12 मुगल शासक वर्ग का संगठन*

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 बाबर और हुमायूँ के अधीन शासक वर्ग

12.3 अकबर के अधीन शासक वर्ग का विकास

12.4 मुगल शासक वर्ग का संघटन

12.4.1 प्रजातीय और धार्मिक समुदाय

12.4.2 विदेशी तत्वः तूरानी और ईरानी

12.4.3 अफगान

12.4.4 भारतीय मुसलमान (*शेखज़ादा*)

12.4.5 राजपूत और अन्य हिन्दू

12.4.6 मराठा और अन्य दक्खनी

12.5 शासक वर्ग का संगठन

12.6 शासक वर्ग के मध्य राजस्व स्रोतों का बंटवारा

12.7 शासक वर्ग की सामाजिक-आर्थिक भूमिका

12.8 शासक वर्ग की जीवन-शैली

12.9 सारांश

12.10 शब्दावली

12.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.12 संदर्भ ग्रंथ

12.13 शैक्षणिक वीडियो

12.0 उद्देश्य

इकाई 11 में हमने मुगल साम्राज्य की दो प्रमुख महत्वपूर्ण प्रशासनिक संस्थाओं – *मनसब* और *जागीर* – की कार्य पद्धति की चर्चा की है। इस इकाई में हम सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दियों में मुगल शासक वर्ग की प्रमुख विशेषताओं पर विचार करने जा रहे हैं। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- शासकीय वर्ग के उद्भव और विकास के बारे में बता सकेंगे,
- शासक वर्ग के प्रजातीय संघटन को समझ सकेंगे,
- इसके संगठन की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- शासक वर्ग के बीच साम्राज्य के राजस्व स्रोतों के बंटवारे के बारे में जान सकेंगे,
- शासक वर्ग की सामाजिक-आर्थिक भूमिका की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे, और
- शासकीय वर्ग की जीवन-शैली से अवगत हो सकेंगे।

* **प्रो. मोहम्मद अफज़ाल खान, सेन्टर ऑफ एडवान्स्ड स्टडी इन हिस्ट्री, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़**

12.1 प्रस्तावना

मुगल शासक वर्ग जिसे आमतौर पर कुलीन वर्ग के रूप में जाना जाता था, इसमें नागरिक और सैन्य अधिकारी दोनों शामिल होते थे। मुगल शासक वर्ग की प्रकृति बहु-प्रजातीय, बहु-धार्मिक और बहु-प्रांतीय थी। पदानुक्रम में बादशाह के पश्चात् उनका स्थान आता था तथा समस्त केन्द्रीय तथा प्रांतीय मंत्री और अधिकारीगण तथा प्रांतीय *सूबेदार* भी इसका हिस्सा थे। उन्हें *मनसब* या पद प्राप्त होता था तथा उन्हें *नकद* धनराशि अथवा विभिन्न क्षेत्रों में भू-अनुदानों (*जागीर*) से प्राप्त राजस्व के माध्यम से वेतन मिलता था। इस प्रकार *मनसबदारों* (कुलीनों/अमीरों) की कुल संख्या का प्रभाव राजनीति और प्रशासन के साथ-साथ साम्राज्य की अर्थव्यवस्था पर भी पड़ता था।

इस इकाई में हम मुगलों के अधीन शासक वर्ग की प्रकृति और पैटर्न के प्रमुख बिन्दुओं पर चर्चा करेंगे। हमारा केन्द्र बिन्दु अकबर का शासनकाल है, लेकिन हम जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब के काल में शासन वर्ग के संगठन की बदलती प्रकृति पर भी विस्तारपूर्वक चर्चा करेंगे।

12.2 बाबर और हुमायूँ के अधीन शासक वर्ग

बाबर के साथ हिंदुस्तान आने वाले शासकीय वर्ग में तूरानी (मध्य एशियाई 'बेग') और कुछ ईरानी शामिल थे। पानीपत के युद्ध (1526) के बाद इब्राहिम लोदी के कुछ अफगान और भारतीय कुलीनों को भी शासनतंत्र में ऊँचा स्थान दिया गया। उन्हें जल्द ही विश्वास में ले लिया गया और उन्हें महत्वपूर्ण कार्य सौंपे गये। कई स्थानीय सरदारों ने भी बाबर की अधीनता स्वीकार कर ली और आगे होने वाले युद्धों में उसके मित्र बने रहे। इस प्रकार पानीपत के युद्ध के बाद बाबर के अधीन शासक वर्ग शुद्ध रूप से तूरानी नहीं रह गया। *बाबरनामा* से पता चलता है कि कुल 116 कुलीनों में से 31 भारतीय थे, जिसमें अफगान और ***शेखज़ादा*** भी शामिल थे।

हुमायूँ के शासनकाल के आरंभिक वर्षों में भारतीय कुलीन (अफगान) मुगलों का साथ छोड़ गये और गुजरात के बहादुर शाह के साथ मिल गये। हालांकि 1540-55 के बीच हुमायूँ के कुलीन वर्ग में महत्वपूर्ण बदलाव उस समय आया जब अधिकांश तूरानी कुलीनों ने उसका साथ छोड़ दिया और मिर्ज़ा कामरान के साथ जा मिले। ईरान जाते समय केवल छब्बीस कुलीनों ने उसका साथ दिया जिनमें से सात ईरानी थे। लेकिन ईरान में उसके प्रवास के दौरान कई और ईरानी उसके साथ मिल गये। उन्होंने ईरान से लेकर कंधार और काबुल प्राप्त करने में हुमायूँ का साथ दिया। काबुल में कई ईरानियों ने हुमायूँ का साथ दिया। हुमायूँ के काबुल प्रवास के दौरान 1545-55 में अनेक ईरानी उसकी सेवा में आये और इस काल में ईरानी अमीरों की संख्या काफी बढ़ गई।

कुलीन वर्ग में ईरानियों की संख्या के बढ़ने के साथ-साथ हुमायूँ ने नये तूरानी कुलीनों को भी शामिल किया। पुराने कुलीनों की शक्ति में संतुलन पैदा करने के लिए उसने निम्न पदों पर आसीन तूरानी कुलीनों को संरक्षण देना शुरू किया और इस प्रकार अपनी स्थिति मजबूत करने का प्रयत्न किया। भारत लौटते समय हुमायूँ के साथ 57 कुलीन आये थे जिनमें 27 तूरानी और 21 ईरानी थे। 1545 और 1555 के बीच मिर्ज़ा कामरान के साथ हुए युद्ध और भारत के अभियान में इन लोगों ने निष्ठापूर्वक हुमायूँ का साथ दिया। उनकी इस निष्ठा के बदले इन कुलीनों को आमतौर पर महत्वपूर्ण जिम्मेदारियाँ सौंपी गयीं।

ईरानियों तथा निम्नपदीय तूरानियों को उच्च पद देकर हुमायूँ को एक निष्ठावान शासक वर्ग निर्मित करने में मदद मिली जिसने उसे भारत को पुनः विजित करने में सहायता की। उसके शासक वर्ग का प्रभावशाली वर्ग अब भी वर्ग और परिवार पर आधारित छोटे-छोटे समूहों तक सीमित था जिसकी जड़ें अभी भी मध्य एशियाई परंपराओं में निहित थीं।

अतः ऐसा प्रतीत होता हैं कि बाबर और हुमायूँ के अधीन शासक वर्ग विकास की अवस्था में ही था और अभी यह एक ऐसे अनुशासित और प्रभावकारी संगठन के रूप में विकसित नहीं हो सका था, जो भारत में साम्राज्य निर्माण के लिए आवश्यक था। बाबर और हुमायूँ ने इसके संघटन में कुछ परिवर्तन किए परन्तु वे उन्हें पूरी तरह से अपने प्रति निष्ठावान और अधीनस्थ न बना सके।

12.3 अकबर के अधीन शासक वर्ग का विकास

अकबर के शासन काल के आरंभिक वर्षों में भी स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। तूरानी और ईरानी दोनों विदेशी तत्वों का वर्चस्व बना रहा। बैरम खाँ के निष्कासन के बाद दरबार में संकट उत्पन्न हुआ और तूरानी कुलीन वर्ग ने विद्रोह कर दिया। उनके दबाव को संतुलित करने के लिए अकबर ने दो नये समुदायों – भारतीय मुसलमानों और राजपूतों को अपने कुलीन वर्ग में जगह दी। संकट के दौरान निष्ठावान रहने के कारण उसने ईरानियों को भी ऊँचे पद देकर सम्मानित किया। हुमायूँ और बैरम खाँ के अधीन पहले से ही ईरानी मुगलों की सेवा कर रहे थे। इस काल में नए ईरानी बेहतर आजीविका की खोज में भारत आये। उनके ईरान से भारत आने के पीछे कई कारक कार्य कर रहे थे। सबसे महत्वपूर्ण कारक यह था कि सोलहवीं शताब्दी के दौरान सफावी ईरान का धार्मिक माहौल सुन्नियों के अनुकूल नहीं था। सफावी शासकों द्वारा दंड दिए जाने के भय से काफी लोग सुरक्षा की खोज में भारत आये। इनमें से कई प्रशासनिक मामलों में दक्ष थे और ईरान के जाने-माने परिवारों से संबद्ध थे। भारत में उनका स्वागत किया गया और अकबर ने उन्हें अपनी सेवा में रखा और उपयुक्त पद दिए। इनमें से कुछ लोगों के संबंधी पहले से मुगल दरबार में मौजूद थे तथा कार्य कर रहे थे। इसके अलावा कुछ लोग यह जानकर कि मुगल दरबार में योग्यता का सम्मान होता है, बेहतर मौके की तलाश में चले आये थे। इस प्रकार मुगल शासकीय वर्ग में ईरानियों की स्थिति न केवल स्थिर और मजबूत हो गयी बल्कि वह अपने हितों को सुरक्षित रखने की स्थिति में बने रहे।

1561 में बैरम खाँ के निष्कासन के बाद से अकबर ने अपनी सेवा में राजपूतों तथा *शेखज़ादों* (कुलीनों के संबंधियों) को नियुक्त करना शुरू कर दिया। इन समुदायों को अपनी सेवा में लेने के लिए उसने उन्हें प्रसन्न करने और विश्वासपात्र बनाने के लिए कुछ कदम उठाये। उदाहरणस्वरूप, उसने राजपूत सरदारों के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित किये, तीर्थ कर (1562) और *जज़िया* (1564) समाप्त कर दिया, जिसे पहले हिंदुओं पर लाद दिया गया था। उज़बेक विद्रोह को कुचलने के बाद और उनकी संख्या काफी हद तक कम करने की दृष्टि से राजपूतों के प्रति अकबर के रवैये में अभूतपूर्व परिवर्तन आया और उनको अधिक संख्या में अमीर वर्ग में शामिल किया गया।

1575-80 के बीच अकबर ने साम्राज्य के लिए भारत के मुसलमान समुदायों का व्यापक समर्थन प्राप्त करने की दृष्टि से उन्हें आगे बढ़ाना और दोस्त बनाना शुरू किया। इसके लिए उसने बहुत से मित्रतापूर्ण कदम उठाये। अकबर अपने इन कदमों से शासक वर्ग के मध्य बिना किसी गंभीर संकट के काफी लंबे समय तक एक वफादार, कार्यकुशल तथा प्रभावशाली नौकरशाही की स्थापना करने में सफल हुआ। लेकिन साथ ही वह उत्तराधिकार की समस्या का समाधान करने में असफल रहा; परिणामस्वरूप शासक वर्ग प्रायः एक गुट या दूसरे गुट में सत्ता के इच्छुक महत्वाकांक्षी राजकुमारों के समर्थन में उनके इर्द-गिर्द संगठित होते थे।

बोध प्रश्न-1

1) बाबर और हुमायूँ के काल में मुगल शासक वर्ग के प्रारम्भिक विकास की चर्चा कीजिए।

....

....

....

2) अकबर के काल में मुगल शासक वर्ग की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

12.4 मुगल शासक वर्ग का संघटन

बाबर, हुमायूँ और अकबर के आरंभिक वर्षों के शासन काल के साथ विकास का पहला चरण पूरा हुआ और मुगल शासक वर्ग में कुछ खास प्रजातीय समुदाय उभर कर सामने आये। इनमें तूरानी, ईरानी, अफगान, शेखज़ादा और राजपूतों के साथ-साथ दक्खनी (बीजापुरी, हैदराबादी और मराठा) भी

महत्वपूर्ण थे। अतः यह एक 'अंतर्राष्ट्रीय' शासक वर्ग था, नियुक्ति के लिए 'राष्ट्रीयता' का कोई बंधन नहीं था। **चन्द्र भान ब्राह्मण** शाहजहाँ के शासन काल के अंतिम वर्षों के शासक वर्ग की इस अन्तर्राष्ट्रीय और विविधतापूर्ण प्रकृति का वर्णन करता है। यूरोपीय पर्यवेक्षकों में बर्नियर भी मुगल दरबार में उज़्बेक, ईरानी, अरब तथा तुर्क नस्लों की विद्यमानता की चर्चा करता है। इसके बावजूद केवल योग्यता और दक्षता के बल पर ही कोई इस वर्ग का सदस्य नहीं बन सकता था, नियुक्ति के लिए कुल और पारिवारिक संबंधों पर खास ध्यान दिया जाता था और आमतौर पर साधारण व्यक्ति के लिए, चाहे वह कितना भी योग्य क्यों न हो, समाज के इस अभिजात्य वर्ग में शामिल होना आसान नहीं था।

खानज़ादा उन अधिकारियों (*मनसबदारों*) के बेटे और संबंधी थे जो पहले से मुगल सेवा में थे यही लोग *मनसबदारी* के सबसे प्रमुख दावेदार थे। पूरे मुगल काल के दौरान शासक वर्ग में लगभग आधी नियुक्तियाँ इस वर्ग में से होती थीं। बचे हुए आधे में ऐसे लोग थे जिनका परिवार पहले से मुगलों की सेवा में नहीं था।

ज़मींदार या स्वायत्त सरदार/राजा इनमें से एक थे। हालांकि दिल्ली सल्तनत के समय से ही वे राज्य सेवा में नियुक्त किये जाते रहे थे परन्तु अकबर ने शासनकाल में उन्हें अधिक महत्व प्राप्त हुआ और उन्हें साम्राज्य के विभिन्न हिस्सों में *मनसब* और *जागीरें* प्राप्त हुईं। ये *ज़ागीरें* उनके पैतृक राज्य या *ज़मींदारी* क्षेत्रों से भिन्न थीं, जिन्हें अब *वतन जागीर* (देखिए **इकाई 11**) कहा गया।

दूसरे राज्यों के कुलीनों और वरिष्ठ पदाधिकारियों को भी उनके अनुभव, स्तर और प्रभाव के अनुरूप मुगल शासक वर्ग में शामिल किया गया। खासकर, दुश्मन राज्य के सेनानायकों को बड़े पदों का प्रलोभन देकर अपने स्वामियों को छोड़कर मुगल शासक वर्ग में शामिल होने के लिए उकसाया गया। मुगल शासक वर्ग में एक छोटा-सा समूह खत्रियों, कायस्थों, जैसी जातियों का भी था, जो लेखा विभाग से संबद्ध होते थे। आमतौर पर उनकी नियुक्ति वित्त विभाग के निचले पदों पर होती थी, लेकिन उनकी उच्च पदों पर पदोन्नति भी हो सकती थी। अकबर के अधीन टोडरमल और औरंगजेब के अधीन राजा रघुनाथ इसी कोटि में आते थे। उन्होंने *दीवान* के रूप में काम किया और उच्च *मनसब* प्राप्त किये।

मुगल सेवा में विद्वान, संतों/सूफियों, दार्शनिकों, आदि को भी बड़े ओहदे और पद दिए जाते थे। अकबर के अधीन अबुल फज़ल, शाहजहाँ के शासन काल में सादुल्लाह खाँ और दानिशमंद खाँ और औरंगजेब के काल में हकीम अबुल मुल्क तूनी, फाज़िल खाँ, आदि इस वर्ग के उल्लेखनीय उदाहरण हैं।

12.4.1 प्रजातीय और धार्मिक समुदाय

जैसा कि पहले बताया जा चुका है मुगल शासकीय वर्ग में स्पष्ट रूप से कुछ प्रजातीय समुदाय थे, जैसे तूरानी, ईरानी, अफगान, शेखज़ादा, राजपूत तथा मराठा। इन्हीं के बीच से नयी नियुक्तियाँ हुईं। मुगल सेवा में मुख्य रूप से इन्हें ऐतिहासिक परिस्थितियों के कारण नियुक्त किया गया परन्तु अंशतः (खासकर राजपूतों के मामले में) एकीकृत साम्राज्यीय सेवा में इन सभी तत्वों को एकबद्ध करने की यह एक सुनियोजित साम्राज्यीय नीति का परिणाम था। इस उद्देश्य से अक्सर विभिन्न समुदायों के अधिकारियों को एक वरिष्ठ पदाधिकारी के निरीक्षण में काम करना पड़ता था। अकबर की *सुलह*-ए *कुल* की नीति का एक उद्देश्य विभिन्न धार्मिक मतों के लोगों जैसे सुन्नियों (तूरानी और शेखज़ादा), शियाओं (बहुत से ईरानी) और हिन्दुओं (राजपूतों) को साथ लेकर चलना था और इन संप्रदायों के बीच के मतभेदों को कम से कम करना था ताकि राज्य के प्रति इनकी निष्ठा में कमी न आये।

12.4.2 विदेशी तत्वः तूरानी और ईरानी

मुगल शासकीय वर्ग में तूरानी (मध्य एशियाई) और ईरानी (इन्हें खुरासानी और इराकी भी कहा जाता था) दो प्रमुख विदेशी समुदाय थे। तूरानियों से हमारा तात्पर्य मध्य एशिया से आने वाले लोगों से हैं, जहाँ तुर्की भाषा बोली जाती थी; वहीं ईरानी (ये खुरासानी और इराकी भी कहलाते थे) आमतौर पर हेरात से बगदाद के मध्य के फारसी भाषी निवासी थे। *आईन-ए अकबरी* के अनुसार मूलतः अकबर के 70 प्रतिशत कुलीन सदस्य विदेशी थे। अकबर के उत्तराधिकारियों के शासनकाल में भी विदेशियों का प्रतिशत काफी ज्यादा रहा और ईरानियों का वर्चस्व बना रहा। जहाँगीर के शासनकाल के आरंभिक वर्षों में मिर्ज़ा अज़ीज़ कोका ने आरोप लगाया कि सम्राट ईरानियों और शेखज़ादों को जरूरत से ज्यादा

महत्व दे रहे हैं, जबकि तूरानियों और राजपूतों को अनदेखा किया जा रहा है। हालांकि शाहजहाँ ने मुगल वंश के मध्य एशियाई संपर्क पर जोर देने की भरपूर कोशिश की, परन्तु इसका ईरानियों की स्थिति पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ा। बर्नियर का कहना है कि औरंगजेब के कुलीन वर्ग में अधिकांशतः ईरानी थे। टैवर्नियर का कहना है कि इन लोगों ने मुगल साम्राज्य में सर्वोच्च पद प्राप्त कर रखे थे।

सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दियों में विभिन्न सामाजिक तथा राजनीतिक कारणों से ईरानी, सफाविद ईरान के विभिन्न क्षेत्रों से लगातार भारत की ओर प्रवास करते रहे (जैसा कि **भाग 12.3** में चर्चा की गई है)।

अतहर अली का मानना है कि अकबर के काल से ही विदेशों से सीधे आने वाले कुलीनों की संख्या में कमी आने लगी। उनके अनुसार औरंगजेब के लंबे शासनकाल में यह कमी और भी स्पष्ट हो गयी। उज़्बेक और सफावी साम्राज्यों का पतन और लंबे समय तक औरंगजेब का दक्खन मामलों में उलझे रहना तथा उत्तर-पश्चिम की ओर आक्रामक सैनिक नीति न अपनाना, आदि कुछ महत्वपूर्ण कारण कहे जा सकते हैं, जिनके कारण प्रत्यक्ष विदेशी नियुक्तियों में गिरावट आई। परन्तु दक्खन सल्तनतों में ईरानियों का आना जारी रहा और इस प्रकार कुलीन समुदाय में उनका वर्चस्व बना रहा। दक्खन के ईरानी कुलीनों में मुक़र्रब खाँ, किज़िलबाश खाँ और मीर जुमला (शाहजहाँ के अधीन), अली मर्दान खाँ हैदराबादी, अब्दुर रज़्ज़ाक लारी और महाबत खाँ हैदराबादी (औरंगजेब के अधीन) प्रमुख थे। सम्राट के सुन्नी कट्टरपंथ का भी ईरानियों की स्थिति पर प्रभाव नहीं पड़ा।

12.4.3 अफगान

मुगल अफगानों पर विश्वास नहीं करते थे, खासकर हुमायूँ द्वारा मुगल साम्राज्य की पुनःस्थापना के बाद से उन्हें संदेह की निगाहों से देखा जाने लगा था। अकबर ने हमेशा उनसे दूरी बनाये रखी। हालांकि उनकी स्थिति जहाँगीर के काल में थोड़ी सुधरी, इस काल में खान जहाँ लोदी को उच्च पद प्राप्त हुआ। शाहजहाँ के शासनकाल में अफगानों का महत्व फिर कम हो गया और खान जहाँ लोदी के विद्रोह से उनकी स्थिति को और धक्का लगा। हालांकि औरंगजेब के शासनकाल के अंतिम दिनों में अफगान कुलीनों की संख्या तेजी से बढ़ी। इसका कारण बीजापुर राज्य से इनका बड़ी संख्या में आना था।

12.4.4 भारतीय मुसलमान (*शेखज़ादा*)

भारतीय मुसलमान *शेखज़ादा* के नाम से जाने जाते थे, इनमें बारहा और कंबोह के सैय्यदों के अतिरिक्त कुछ अन्य महत्वपूर्ण कुल भी शामिल थे।

अकबर के समय से ही महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त बारहा और कंबोह सैय्यदों का महत्व औरंगजेब के शासनकाल में समाप्त हो गया। खासकर, बारहा सैय्यदों की स्थिति ज्यादा खराब हुई। अपनी लड़ाकू योग्यता के कारण उन्हें एक समय मुगल सेना के अग्रगामी दस्तों में रहने का सम्मान प्राप्त हुआ था, उन्हीं पर औरंगजेब ने अविश्वास किया। इसका कारण शायद यह था कि उत्तराधिकार के युद्ध में वे दारा शिकोह के निष्ठावान समर्थक थे।

औरंगजेब के शासनकाल के अंतिम वर्षों में कुछ कश्मीरियों को भी महत्वपूर्ण पद प्राप्त हुए; इनायतुल्लाह कश्मीरी सम्राट का एक प्रमुख कृपापात्र कुलीन था।

12.4.5 राजपूत और अन्य हिंदू

जैसा कि पहले चर्चा की जा चुकी है अकबर के शासनकाल के दौरान राजपूतों और हिंदुओं को मुगल शासक वर्ग में शामिल किया गया। इनके प्रति अकबर का व्यवहार उदार और मित्रतापूर्ण था। समकालीन स्रोतों से पता चलता है कि आमतौर से राजपूतों को अकबर से लेकर औरंगजेब तक के शासनकाल में सम्मान और प्रतिष्ठा मिलती रही। शाहजहाँ कट्टर मुसलमान था और अपना कट्टरपंथ दर्शाने के लिए उसने कई कदम उठाए। परन्तु उसके शासनकाल में राजपूत *मनसबदारों* की संख्या में अपार वृद्धि हुई। औरंगजेब भी एक कट्टर मुसलमान था और अक्सर उस पर हिंदू-विरोधी नीतियों को अपनाने का आरोप लगाया जाता है। पर तथ्य यह है कि उसके शासनकाल के आरंभिक वर्षों में शाहजहाँ के शासनकाल से भी ज्यादा राजपूत कुलीन नियुक्त किये गये। शाहजहाँ के शासनकाल

में किसी राजपूत कुलीन को 7000 *जात* का पद प्राप्त नहीं था परन्तु औरंगजेब के शासनकाल में मिर्ज़ा राजा जय सिंह और जसवंत सिंह को 7000 *जात*/7000 *सवार* के पद पर पदोन्नति दी गयी। इसी प्रकार 1606 में मानसिंह को बंगाल से वापस बुलाये जाने के बाद से किसी राजपूत कुलीन को किसी महत्वपूर्ण प्रांत की जिम्मेदारी नहीं सौंपी गयी थी। 1665 में जय सिंह को दक्खन का वायसराय नियुक्त किया गया। इस प्रकार का प्रतिष्ठित और महत्वपूर्ण पद आमतौर पर केवल राजकुमारों को ही दिया जाता था। जसवंत सिंह को भी दो बार (1659-1661 और 1670-1672) गुजरात का गवर्नर नियुक्त किया गया। यह ध्यान रखने योग्य है कि औरंगजेब के शासनकाल के आरंभिक चरण (1658-1678) में थोड़ी गिरावट (21.6 प्रतिशत) आने के बावजूद हिंदू *मनसबदारों* का प्रतिशत अकबर (22.5 प्रतिशत) और शाहजहाँ (22.4 प्रतिशत) के शासनकाल के आसपास बना रहा। इसे निम्नलिखित तालिका से और अच्छी तरह समझा जा सकता है।

तालिका 1

कुल *मनसबदार*	अकबर (1595)	शाहजहाँ (1628-50)	औरंगजेब (1658-78)	(1679-1707)
क) कुल *मनसबदार*	98	437	486	575
ख) हिंदू	22	98	105	182
क और ख का प्रतिशत	22.5	22.4	21.6	31.6

औरंगजेब के शासनकाल के अंतिम चरण (1679-1707) में हिंदू कुलीनों का प्रतिशत 31.6 तक पहुँच गया था। दूसरे शब्दों में विगत वर्षों की तुलना में अब ज्यादा हिंदुओं को मुगल सेवा में शामिल किया गया। इस काल में हिंदुओं का प्रतिशत मराठों के आगमन से बढ़ा और कुलीन वर्ग में उनकी संख्या राजपूतों से कहीं अधिक हो गई।

12.4.6 मराठा और अन्य दक्खनी

मराठों की नियुक्ति शाहजहाँ के अहमदनगर अभियान के समय से शुरू हुई। दक्खनी मामलों में मराठों की महत्वपूर्ण भूमिका के कारण मुगल शासकीय वर्ग में उन्हें तत्परता से नियुक्त किया गया। औरंगजेब ने भी काफी संख्या में मराठों को नियुक्त किया और उनमें से कुछ को ऊँचे पद भी प्रदान किए। मराठा सरदारों को बड़े *मनसब* देकर अपनी तरफ मिलाने के मुगलों के प्रयास असफल रहे। औरंगजेब के अधीन मराठा कुलीनों की निष्ठा हमेशा अस्थिर रही और मुगल शासक वर्ग में उन्हें कभी कोई महत्वपूर्ण पद प्राप्त नहीं हुआ।

अन्य दक्खनियों में वे कुलीन शामिल थे जो मुगल सेवा स्वीकार करने से पहले बीजापुर या गोलकुंडा के दक्खनी राज्यों में कार्यरत थे। उनमें से कुछ भारतीय मूल के थे, जैसे अफगान, *शेखज़ादा* या भारतीय मुसलमान। कुछ विदेशी थे जैसे ईरानी और तूरानी। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रथम चरण में औरंगजेब के कुलीन वर्ग में ज्यादा दक्खनियों को नियुक्त नहीं किया गया था (कुल 486 *मनसबदारों* में उनकी संख्या 58 थी जो मात्र 11.8 प्रतिशत थी)। उन्हें निचले दर्जे का कुलीन माना जाता था, दक्खन की प्रथा के अनुसार उनके पूरे वेतन से एक-चौथाई हिस्सा काट लिया जाता था।

हालांकि दूसरे चरण में दक्खनी कुलीनों (बीजापुरियों, हैदराबादियों और मराठों) को बड़ी संख्या में नियुक्त किया गया (कुल 575 *मनसबदारों* में उनकी संख्या 160 थी जो 27.8 प्रतिशत थी)। औरंगजेब के शासन के अंतिम वर्षों में दक्खनियों का समावेश इतना ज़्यादा हुआ कि पुराने कुलीन वर्ग, *खानाज़ादों* ने उनकी नियुक्तियों पर अपना असंतोष व्यक्त किया।

बोध प्रश्न-2

1) मुगल कुलीन वर्ग में राजपूतों की क्या स्थिति थी?

....

....

....

2) मुगल शासक वर्ग के प्रमुख समूहों के नाम लिखिए?

....

....

....

12.5 शासक वर्ग का संगठन

मुगल शासकीय वर्ग दो महत्वपूर्ण व्यवस्थाओं *मनसब* और *जागीर* के ढाँचे के अंतर्गत संगठित था, जिसने लगभग दो सौ सालों तक मुगल साम्राज्य को संभाले रखा। *मनसब* व्यवस्था प्रत्यक्ष आदेश के सिद्धांत पर आधारित थी अर्थात सभी *मनसबदार*, चाहे उनका ओहदा कुछ भी हो, सीधे मुगल सम्राट के अधीन थे।

***मनसब* व्यवस्था:** तकनीकी रूप में *मनसब* व्यवस्था में *मनसब* का तात्पर्य पद या ओहदा था। मुगलों के अधीन *मनसब* का कार्यरूप तिहरा था:

i) इससे इसके प्राप्तकर्ता (*मनसबदार*) का पदानुक्रम में स्थान तय होता था,

ii) इसके आधार पर *मनसबदार* का वेतन निश्चित किया जाता था, और

iii) इसके अंतर्गत *मनसबदार* को एक निश्चित संख्या में घोड़ा और सेना का रख-रखाव करना होता था। प्रत्येक पदाधिकारी को दोहरा ओहदा *ज़ात* और *सवार* प्रदान किया जाता था। *ज़ात* एक व्यक्तिगत ओहदा होता था जिसके आधार पर *मनसबदार* का पदानुक्रम तय होता था और इससे उसका व्यक्तिगत वेतन भी निर्धारित होता था। *सवार* एक सैनिक ओहदा होता था और जिससे *मनसबदार* द्वारा रखी जाने वाली सेना की संख्या तय होती थी और इसके आधार पर सेना के रख-रखाव के लिए धन निर्धारित किया जाता था (विस्तार के लिए **इकाई 11** देखिए)।

मुगल *मनसबदारों* को उनके *ज़ात* और *सवार* पद के आधार पर नगद धन या *जागीर* के रूप में भुगतान किया जाता था।

मनसबदारों की नियुक्ति में राष्ट्रीयता की कोई बाधा नहीं थी। इस पद पर नियुक्ति के लिए *खानज़ादों* (पहले से कार्य कर रहे *मनसबदारों* के पुत्र और वंशज) का पहला दावा होता था। ईरान और मध्य एशिया से आये लोगों की भी इस पद पर नियुक्ति की जाती थी। अनुशंसा (*तजवीज़*) के आधार पर भी नियुक्तियाँ होती थीं। दुश्मन के खेमे को छोड़कर आये सेनानायकों की भी इस पद पर नियुक्तियाँ की जाती थीं।

केन्द्रीय मंत्रियों, राजकीय परिवार के राजकुमारों, प्रांतीय गवर्नरों और महत्वपूर्ण सेनानायकों की अनुशंसा पर भी नियुक्तियाँ और पदोन्नतियाँ होती थीं (विस्तार के लिए **इकाई 11** देखिए)।

12.6 शासक वर्ग के बीच राजस्व स्रोतों का बंटवारा

ए. जान कैसर और शीरीन मूसवी ने दर्शाया है कि साम्राज्य के कुल राजस्व स्रोत का 82 प्रतिशत 1571 *मनसबदारों* द्वारा प्राप्त किया जाता था। उच्चस्थ 12 *मनसबदारों* का साम्राज्य की कुल आय के 18-52 प्रतिशत पर नियंत्रण था, जबकि बचे हुए 1,149 *मनसबदार* केवल राजस्व का 30 प्रतिशत नियंत्रित करते थे। इस प्रकार अकबर के शासनकाल में राजस्व स्रोत कुछ ही व्यक्तियों के हाथों में केंद्रित थे। यह केन्द्रीकरण उसके उत्तराधिकारियों के समय भी कायम रहा। ए. जान कैसर के अध्ययन के अनुसार शाहजहाँ के अधीन कार्यरत 445 *मनसबदार* राजस्व के 61.5 प्रतिशत पर नियंत्रण रखते थे और इनमें से उच्चस्थ 25 *मनसबदारों* का 24.5 प्रतिशत राजस्व स्रोतों पर नियंत्रण था। *मनसबदारों* का वेतनमान काफी अधिक था। खान-ए जहान लोदी की अपनी *जागीर* से प्राप्त वार्षिक आय 30 लाख रुपये थी जिसमें से 24 लाख उसके द्वारा अपने मातहतों तथा *सवारों*, घोड़े/घुड़सवारों पर खर्च करना था और शेष 6 लाख रुपये उसकी बचत थी। महाबत खाँ की वार्षिक आय 1 करोड़ रुपये थी जिसे वह पूरा का पूरा खर्च कर दिया करता था। शाहजहाँ के शासनकाल में उसका वार्षिक वेतन 50 लाख रुपये था।

अधिकांशतः कुलीन भू-राजस्व से अपनी आय ग्रहण करते थे। मुगल शासक वर्ग के कुछ महत्वपूर्ण कुलीनों (जिनकी संख्या काफी कम थी) के पास धन का अत्यधिक संकेंद्रण हो गया था। *सवार* ओहदे के आधार पर उन्हें जो राशि दी जाती थी उसे वे अपनी सेना के रख-रखाव पर पूरी तरह खर्च नहीं करते थे। इससे कुलीनों के हाथों में धन का और भी अधिक सकेंद्रण हो गया था।

12.7 शासक वर्ग की सामाजिक-आर्थिक भूमिका

मुगल शासक वर्ग द्वारा सोने-चाँदी, नकद तथा बहुमूल्य रत्नों के रूप में अपरिमित मात्रा में धन संग्रह किया गया था जिसे वे अक्सर व्यापार में निवेश किया करते थे, या तो स्वयं खुद सीधे व्यापार में संलग्न होकर या व्यापारियों को अग्रिम धनराशि देकर। उनके द्वारा समुद्री व्यापार में भी बड़ी मात्रा में पूँजी निवेश किया गया। टेवर्नियर के अनुसार, 'जैसे ही आप सूरत पोतारोहण के लिए पहुँचे, आप प्रचलन में अत्यधिक धनराशि पाएँगे। क्योंकि होर्मुज, बसोरा, और मोचा, यहाँ तक कि बैंटम, अचिन और फिलीपीन्स के लिए भी सट्टेबाज़ी पर पैसा लगाना भारत के कुलीनों का प्रमुख व्यवसाय है।' अग्रिम पूँजी-प्रदत्त करने के अलावा मुगल कुलीन अपनी धनराशि व्यापारिक निवेश में भी लगाते थे। कुछ के पास अपने खुद के जहाज भी होते थे जो उनके अपने स्वयं के माल से लदे विभिन्न बन्दरगाहों पर जाते थे; अथवा, कुछ मामलों में अन्य व्यापारियों के माल के साथ। मीर जुमला अक्सर अंग्रेजों के साथ व्यापारिक सौदे करता था, और कभी-कभी **इंग्लिश *फैक्टरों*** (**English Factors**) को अग्रिम धनराशि प्रदान करता था। वह सही अर्थों में 'व्यापारी राजकुमार' था। उसके जहाज अराकान, दक्षिण भारत, बंगाल, ईरान तथा अरब क्षेत्रों के मध्य व्यापार में रत थे।

यह भी सुस्पष्ट है कि कुलीनों की व्यापारिक गतिविधियाँ केवल विदेशी व्यापार तक ही सीमित नहीं थीं, यह आंतरिक व्यापार की ओर भी विस्तृत थीं। अगर मीर जुमला मुगल कुलीनों द्वारा समुद्र-जनित व्यापार का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करता है, तो शाइस्ता खाँ आंतरिक व्यापार में रत कुलीन वर्ग का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। उसने अपनी गुजरात तथा बंगाल की *सूबेदारी* के दौरान विशिष्ट व्यापारिक फायदा उठाया जहाँ उसके द्वारा नमक, सुपारी और यहाँ तक कि जानवरों के चारे जैसी दैनिक प्रयोग की वस्तुओं के व्यापार पर एकाधिकार तथा नियंत्रण करने की कोशिश की गई।

मुगल कुलीन यूरोप की विलासिता की वस्तुओं और गहनों के प्रति विशेष उत्साहित थे। शाइस्ता खाँ को यूरोप की दुर्लभ वस्तुओं, विशेष रूप से मोती और जवाहरात खरीदने का शौक था। अपनी गुजरात, बंगाल और दक्खन की *सूबेदारी* के दौरान उन्होंने टैवर्नियर से ऐसी बहुमूल्य वस्तुएँ खरीदीं। मानुची उसे बहुमूल्य पत्थरों का महान् शौकीन मिजाज़ कहता है।

12.8 शासक वर्ग की जीवन-शैली

शासकीय वर्ग के पास अपार संपत्ति रहने के कारण वे ठाठ और रईसी का जीवन बिताते थे। उनकी कई पत्नियाँ होती थीं, उनके पास नौकरों, ऊँटों और घोड़ों का एक पूरा दल होता था। उनके घरेलू मदों और *हरम* के रख-रखाव पर काफी धन खर्च किया जाता था। इसके बावजूद उनके पास काफी धन बचा रहता था जिसे वे भव्य भवन और जन सुविधा के कार्य से संबंधित इमारतें बनवाने पर खर्च करते थे।

शेख फरीद भक्करी की जीवनी संबंधित रचना *ज़खीरत-उल खवानीन* (1642) को पढ़ने से पता चलता है कि मुगल पदाधिकारी और कुलीन अपने निवास के लिए भव्य और आकर्षक भवन बनवाया करते थे। पेलसर्ट इन भवनों का उल्लेख 'बहु-कक्षीय वैभवपूर्ण और मनोहारी' के रूप में करता है। इनमें से कई भवनों के अन्दर बगीचे ओर जलाशय थे, तथा गर्मी के मौसम में इन जलाशयों को प्रतिदिन स्वच्छ जल से भरा जाता था जिसे बैलों द्वारा कुंओं से खींचकर निकाला जाता था। इन उद्यानों में ये कुलीन बादशाह के सम्मान में भव्य भोजों का आयोजन करते थे। मैनरीक आसफ खान के महल पर आयोजित एक रात्रिभोज का विस्तृत विवरण प्रदान करता है जो उन रात्रिभोजों की व्यवस्था और उसमें अंतर्निहित परिष्करण को इंगित करता है।

इसी प्रकार, जहाँ तक जन सुविधाओं संबंधी निर्माण कार्य का संबंध है हमारे स्रोत बताते हैं कि पूरे साम्राज्य में कुलीनों ने अनेकों *सरायें, हम्माम* (जन स्नान सुविधा), कुंएँ, सीढ़ीनुमा कुंएँ (*बावली*),

जलाशय, बाज़ार, सड़कें और बागान निर्मित किए। अकबर के शासनकाल में मुरतज़ा खान शेख फरीद बुखारी ने लाहौर, आगरा, तथा अहमदाबाद में मस्जिदों, *सरायों*, *खानकाहों* और जलाशयों का निर्माण कराया। मुरतजा खाँ शेख फरीद बुखारी अकबर के समय का एक महान् भवन निर्माता था। अहमदाबाद में उसने एक *सराय*, मस्जिद और अन्य इमारतें बनवाई थीं। जहाँगीर के शासनकाल में अब्दुर रहीम खान खानान, आजम खाँ, ख्वाजा जहाँ काबुली, आदि महान् भवन निर्माता थे।

कुलीनों की पत्नियाँ और कर्मचारी भी जनसुविधा के निर्माण कार्य में बराबर की रुचि लेते थे। मुगल कुलीनों द्वारा निर्मित धार्मिक और शैक्षिक भवनों, जैसे मस्जिद, मदरसे, *खानकाह*, मकबरा और मंदिरों (*देवराह*) का अक्सर जिक्र मिलता है। कुछ हिंदु कुलीनों और पदाधिकारियों ने भी मस्जिदें बनवाईं। मुगल काल के दौरान अपने लिए और अपने मृत पूर्वजों के लिए मकबरा बनवाने का आम प्रचलन था। इन भवनों के चारों ओर सुन्दर बागान लगाये जाते थे। इन मकबरों के निर्माण में कभी-कभी कुलीन आपस में होड़ लगा देते थे। सूफियों के लिए उनके शिष्यों द्वारा भी मकबरे निर्मित किए गये। मुगल कुलीनों और पदाधिकारियों ने भारत से बाहर भी जन-कल्याण से संबंधित इमारतें निर्मित कीं।

मुगल दरबार के कई ईरानी कुलीनों द्वारा ईरान में मस्जिदों, *सरायों*, आदि के निर्माण के लिए धनराशि प्रदान की गई थी। अनेक कुलीनों तथा अधिकारीगणों द्वारा भी अपने पैतृक स्थानों अथवा अपने अधिकार क्षेत्र में शहरों, *कस्बों* तथा गाँवों की स्थापना की गई। कभी-कभी पुराने विद्यमान नगरों का जीर्णोद्धार किया जाता था और उन्हें उद्यानों, वृक्षों, सड़कों तथा सार्वजनिक उपयोगिता के भवनों से सुशोभित किया जाता था।

जब भी कोई नया शहर या नगर बसाया गया उसमें शहरी जीवन से संबद्ध सभी प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध कराई गयीं ताकि वहाँ लोगों को बसाने के लिए प्रेरित किया जा सके। बागानों का निर्माण कुलीन सांस्कृतिक गतिविधियों का एक अंग था। शाहजहाँ के *वकील* हाकिम अलीमुद्दीन *वज़ीर* खान ने अपने पैतृक शहर खबरोत में एक नए नगर का निर्माण करवाया और उसे वहाँ के निवासियों को सौंप दिया। उन्होंने वहाँ एक बाजार, एक *सराय*, एक *बावड़ी*, मस्जिद, मदरसा और एक औषधालय भी बनवाया और उसके रखरखाव के लिए अनुदान भी दिया।

ए. जान कैसर ने मुगल आभिजात्य वर्ग के सामाजिक मूल्यों और निर्माण गतिविधि में एक प्रकार का संबंध दिखलाया है। उनका कहना है कि ये मूल्य स्थापित भारतीय परंपराओं की ही निरंतरता थी। इतने व्यापक स्तर पर निर्माण कार्य क्यों किया गया? ऐसा लगता है कि यह एक सम्मान का प्रश्न था। इन सांस्कृतिक गतिविधियों के पीछे अपने हमवतनों के साथ प्रतियोगिता का भाव भी निहित था। लोग अनन्त काल तक अपने नाम को जीवित रखना चाहते थे। उनकी यह इच्छा उनकी निजी और सार्वजनिक गतिविधियों से स्पष्ट होती है। यह सम्भ्रान्त लोग धार्मिक समर्थन के लिए भी निर्माण कार्य में रुचि लेते थे, उदाहरणस्वरूप मस्जिदों का बड़ी संख्या में निर्माण। इसके अतिरिक्त आम लोगों की अपेक्षाओं से प्रेरित होकर भी ये निर्माण कार्य करवाते थे। आम जनता इन संपन्न लोगों से यह अपेक्षा रखती थी कि वे सांस्कृतिक पक्ष से जुड़ी जनसुविधाएँ उपलब्ध कराएँ। उदाहरणस्वरूप, अस्पताल, मस्जिद, *सराय*, आदि। जनता यह अपेक्षा रखती थी कि साधन संपन्न और अमीर लोग अपने धन का एक भाग उनकी भलाई के लिए खर्च करें। मुगल कुलीनों ने अपनी यह भूमिका अच्छी तरह निभाई। इसके कारण कुछ मात्रा में ही सही समाज के भौतिक संसाधनों का बंटवारा समाज के लिए हुआ।

अपने उपभोग की आरामदायक वस्तुओं के निर्माण के लिए ये कुलीन अपने *कारखाने* चलाते थे। इनमें कालीन, स्वर्ण-जड़ित रेशमी वस्त्र और उच्च कोटि के स्वर्णाभूषण, आदि व्यक्तिगत प्रयोग के लिए बनाये जाते थे। अली मर्दान खान ने लाहौर और कश्मीर में कुछ *कारखाने* स्थापित किए जहाँ कालीन और शॉल निर्मित किए जाते थे। इतिमाद खान को भी कश्मीर के शॉल और ऊन उद्योग में अत्यधिक रुचि थी और यह कहा जाता है कि उन्होंने ऊनी शॉल, *पट्टू*, *तबरेज़ी* और *करबलाई* में नवीन पैटर्नों को समाविष्ट किया। इसके अतिरिक्त ये विभिन्न देशों से काफी मात्रा में आरामदायक वस्तुओं का आयात भी करते थे। ब्रिटिश और डच स्रोतों से प्राप्त अनेकों विवरण यह दर्शाते हैं कि यह शासक वर्ग विलासिता की मूल्यवान वस्तुओं की माँग करता था और इसके लिए बड़ी धन-राशि खर्च करता था।

कुलीनों को बड़ी मात्रा में दान में धनराशि खर्च करते हुए भी पाया जाता है। उनमें से कुछ खासतौर पर अपने पैतृक स्थानों के निवासियों को उपहार देने के प्रति विशिष्ट रूप से सजग थे। मीर मासूम

भक्करी ने अपने पैतृक शहर भक्कर के निवासियों की एक बड़ी संख्या के लिए वार्षिक, मासिक, साप्ताहिक और दैनिक वज़ीफा तय कर रखा था। वह अपनी तैनाती के स्थान से अपने पैतृक नगर के निवासियों को उपहार भी भेजता था।

अपने फुरसत का समय व्यतीत करने के कुलीनों के अपने अलग-अलग शौक थे। जैस – शिकार, बागवानी, पशुपालन, धातुओं को सोने में बदलने की रसायन विद्या (alchemy), आदि। उनमें से कई संगीतकारों के संरक्षक और बुद्धिजीवी भी थे। इन गतिविधियों तथा अन्य खेलकूद संबंधी गतिविधियों के अतिरिक्त पर्व-त्योहारों, घरेलू शादियों, आदि में अपार धन-राशि खर्च की जाती थी।

चूँकि उनकी आय और व्यय पर कोई प्रतिबंध तथा लेखापरीक्षण नहीं था, इन कुलीनों द्वारा अपने क्षेत्र में उनकी स्वयं की *'सरकार'* या स्वायत्त प्रशासन था जिसमें उनके सैन्य दल, *हरम,* घरेलू कर्मचारी, अधिकारी और नौकर शामिल थे।

बोध प्रश्न-3

1) मुगल शासक वर्ग के संगठन का वर्णन कीजिए।

....

....

....

2) मुगल शासक वर्ग राजस्व स्रोतों से प्राप्त अपार धन का प्रयोग किस प्रकार करता था?

....

....

....

3) मुगल शासक वर्ग की सामाजिक-आर्थिक भूमिका की चर्चा कीजिए।

....

....

....

12.9 सारांश

इस इकाई में हमने मुगल शासक वर्ग के विकास के विभिन्न चरणों की जानकारी प्राप्त की। आरंभ में इसमें तूरानी बाहुल्य वर्ग का वर्चस्व रहा, परन्तु राजनीतिक जरूरतों के कारण ईरानी, भारतीय मुसलमान, राजपूत, मराठा और अफगानों की भी नियुक्ति इस वर्ग में हुई। इस प्रकार यह शासक वर्ग एक मिले-जुले बहुजातीय व बहुराष्ट्रीय वर्ग के रूप में विकसित हुआ। यह मुगल शासक वर्ग दो महत्वपूर्ण संस्थाओं *मनसबदारी* और *जागीरदारी* के माध्यम से संगठित हुआ। *मनसबदारी* और *जागीरदारी* दो ऐसी संस्थाएँ थीं जिनके आधार पर मुगल साम्राज्य 200 वर्षों की लंबी अवधि तक कायम रह सका। *मनसबदार* एक ऐसा शासक वर्ग था जो न केवल धनवान था बल्कि समाज का एक संभ्रान्त वर्ग था। अपने कार्यकाल में ये लोग काफी धन जमा कर लेते थे और अपने परिवार के लिए बड़ी संपदा छोड़ देते थे। मुगल शासक वर्ग ने अपनी संचित निधि को व्यापार में या तो सीधे या व्यापारियों को अग्रिम धनराशि के रूप में पूँजी देकर निवेशित किया। उन्होंने विलासिता की वस्तुओं और कुशल कारीगरों को भी संरक्षण प्रदान किया।

12.10 शब्दावली

चन्द्र भान ब्राह्मण — फारसी कवि एवं लेखक जो अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ तथा औरंगजेब के शासनकालों में उत्तरजीवी था (मृ. *c.*1670)

इंग्लिश फैक्टर — भारत में अंग्रेजी प्रतिष्ठानों में नियुक्त अधिकारीगण

खानज़ाद — कुलीनों/*मनसबदारों* के पुत्र तथा कुटुम्बजन

शेखज़ादा	भारतीय मुस्लिम
तूरानी	मध्य एशिया का कुलीन वर्ग जो अधिकतर तुर्की-भाषी थे

12.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) देखिए भाग 12.2

2) देखिए भाग 12.3

बोध प्रश्न-2

1) देखिए उप-भाग 12.4.5

2) देखिए भाग 12.4

बोध प्रश्न-3

1) देखिए भाग 12.5

2) देखिए भाग 12.6

3) देखिए भाग 12.7

12.12 संदर्भ ग्रंथ

अली, अतहर, (1997; नवीन संस्करण) द *मुगल नोबिलिटी अंडर औरंगजेब* (नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस).

अनवर, फिरदौस, (2001) *नोबिलिटी अंडर द मुगल्स (1628-1658)* (नई दिल्लीः मनोहर).

खान, मोहम्मद अफज़ाल, (2016) द *रूलिंग इलीटः ईरानियन नोबिलिटी अंडर* शाहजहाँ *एंड औरंगजेब* (नई दिल्लीः वीवा बुक्स).

खान, इक्तिदार आलम, (2016) द *मुगल नोबिलिटीः टू बायोग्राफीज़* (नई दिल्लीः परमानेन्ट ब्लैक).

12.13 शैक्षणिक वीडियो

पैट्रोनेज ऑफ नोबिलिटी अंडर अकबर
https://www.youtube.com/watch?v=Vo48-qnUi3s

इकाई 13 वित्तीय व्यवस्था*

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 मुगल कालीन भू-राजस्व व्यवस्था

  13.2.1 भू-राजस्व निर्धारण प्रणाली

  13.2.2 भू-राजस्व माँग का परिणाम

  13.2.3 भुगतान का माध्यम

  13.2.4 भू-राजस्व वसूली

13.3 राजस्व में राहत रियायतें

13.4 मुगलों का भू-राजस्व प्रशासन

13.5 भू-राजस्व के अतिरिक्त अन्य कर

13.6 भू-राजस्व के अतिरिक्त अन्य करों की वसूली का तरीका

13.7 सारांश

13.8 शब्दावली

13.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.10 संदर्भ ग्रंथ

13.11 शैक्षणिक वीडियो

13.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम मुगल कालीन वित्तीय व्यवस्था के कुछ महत्वपूर्ण आयामों पर विचार करेंगे। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे:

- मुगलों के अधीन राजस्व निर्धारण की विधि,
- मुगलों के अधीन भू-राजस्व माँग के परिमाण,
- मुगलों के भू-राजस्व वसूल करने के माध्यम,
- मुगलों के भू-राजस्व वसूल करने के विभिन्न तरीकों,
- मुगलों द्वारा संकट की स्थिति में किसानों को दी जाने वाली राहतों-रियायतों,
- मुगल भू-राजस्व व्यवस्था में संलग्न विभिन्न पदाधिकारियों के अधिकारों और कर्त्तव्यों,
- मुगलों द्वारा भू-राजस्व के अतिरिक्त वसूले जाने वाले अन्य करों की जानकारी, और
- कर वसूल करने के तरीकों।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

* प्रो. सुनीता ज़ैदी, इतिहास तथा संस्कृति विभाग, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली; और प्रो. ए. आर. खान, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली। यह इकाई हमारे पूर्ववर्ती पाठ्यक्रम ई.एच.आई.-04: *भारतः 16वीं शताब्दी से मध्य 18वीं शताब्दी तक,* खंड 5, इकाई 16 और 20 से ली गई है।

13.1 प्रस्तावना

मुगलों के अधीन भू-राजस्व व्यवस्था की मूल विशेषता यह थी कि कृषकों से उनका अधिशेष उत्पादन (जीवन यापन के लिए जरूरी मात्रा के अतिरिक्त उत्पादन) भू-राजस्व के रूप में ले लिया जाता था, जो राज्य की आय का प्रधान स्रोत था। प्रारम्भिक ब्रिटिश प्रशासकों ने भू-राजस्व को ज़मीन के लगान के रूप में ग्रहण किया, क्योंकि उनकी समझ में राजा भूमि का मालिक था। मुगल कालीन इतिहास के अध्ययन से यह पता चलता है कि उस काल में यह कर फसल (उत्पादन) पर लगता था और इस प्रकार मुगल व्यवस्था अंग्रेजों द्वारा अपनाई गई भू-राजस्व प्रणाली से भिन्न थी। अबुल फज़ल *आईन-ए अकबरी* में राज्य द्वारा करारोपण को न्यायोचित ठहराते हुए कहता है कि 'यह राज्य द्वारा दिए जाने वाले संरक्षण और न्याय व्यवस्था के बदले लिया जाने वाला संप्रभुता शुल्क है।'

आइए इस इकाई में मुगल कालीन आर्थिक संस्थाओं और परिवर्तनों का अध्ययन करें।

मुगल कालीन भारत में आय का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्त्रोत भू-राजस्व था। इसके अतिरिक्त राज्य की आय के कुछ अन्य स्रोत भी थे। इस इकाई में हम राज्य की आय के भू-राजस्व के अतिरिक्त अन्य स्रोतों की भी चर्चा करेंगे। समकालीन स्रोतों में भू-राजस्व का भी विस्तार से उल्लेख मिलता है, परन्तु अन्य करों का उल्लेख सुस्पष्टता और विस्तार से नहीं किया गया है।

वह क्षेत्र जिसका राजस्व सीधे सुल्तान के निजी कोष के लिए वसूल किया जाता था, *खालिसा* कहलाता था। मुगलों के अधीन *खालिसा* या *खालिसा-ए शरीफा* स्थिर नहीं थी, बल्कि समय-समय पर बदलती रही। अकबर के काल में यह कुल ***जमा*** का लगभग 25 प्रतिशत थी; जबकि जहाँगीर के काल में यह घटकर कुल जमा का 1/20वाँ हिस्सा हो गई। शाहजहाँ के काल में यह *जमा* का 1/7वाँ हिस्सा थी, जो औरंगज़ेब के काल में कुल *जमा* का 1/5वाँ हिस्सा हो गई। लेकिन फिर भी साम्राज्य के कुल राजस्व का लगभग 4/5वाँ भाग *जागीरों* के रूप में आवंटित किया जाता था।

13.2 मुगलकालीन भू-राजस्व व्यवस्था

मुगल शासन के दौरान भू-राजस्व के लिए फारसी शब्द *माल* और *माल वाजिब* का उपयोग होता था। *खराज* शब्द का उपयोग नियमित रूप से नहीं होता था।

भू-राजस्व वसूली की प्रक्रिया दो चरणों में सम्पन्न होती थी क) कर निर्धारण (*तशखीस/जमा*), और ख) वास्तविक वसूली (***हासिल***)।

राज्य की माँग को निर्धारित करने के लिए कर निर्धारण और मूल्यांकन किया जाता था। इस माँग के आधार पर *खरीफ* और *रबी* फसलों के लिए अलग-अलग वास्तविक वसूली की जाती थी।

13.2.1 भू-राजस्व निर्धारण प्रणाली

मुगलों के अधीन *खरीफ* और *रबी* फसलों का राजस्व निर्धारण अलग-अलग किया जाता था। मूल्यांकन और निर्धारण प्रक्रिया समाप्त होने पर एक ***पट्टा***, *क़ौल* या *क़ौल-करार* जारी किया जाता था जिसमें किसानों द्वारा देय कर राशि या राजस्व माँग की दर का उल्लेख होता था। इसके साथ-साथ जिस पर कर लगाया जाता था उसे ***क़बूलियत*** अर्थात् 'स्वीकृति' देनी पड़ती थी कि उसे यह निर्धारण मंजूर है और वह कब और कैसे 'भुगतान' करेगा।

यहाँ हम आमतौर पर प्रचलित कुछ प्रणालियों का उल्लेख करेंगे:

1) ***गल्ला बख्शी*** **(फसल-बंटवारा विधि)**: कुछ क्षेत्रों में इसे *भाओली* और *बटाई* भी कहते थे। *आईन-ए अकबरी* में फसल के बंटवारे के लिए तीन तरह की पद्धतियों का उल्लेख मिलता है।

   क) **खलिहान में अनाज को अलग करने के तुरन्त बाद ही राजस्व का बंटवारा**: यह बंटवारा निर्धारित समझौते के आधार पर दोनों पक्षों के समक्ष होता था।

   ख) ***खेत बटाई***: फसल के खेत में लगे रहने के वक्त ही खेत में निशान लगाकर खेत को हिस्सों में बांट लिया जाता था।

ग) ***लांग बटाई***: फसल काटकर (उसे अनाज से अलग किए बिना) खलिहान में गट्ठर बनाकर रख दिया जाता था और इसके बाद फसल के इन गट्ठरों का बंटवारा होता था।

मलिकज़ादा कृत *निगारनामा-ए मुंशी* (17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लिखित) में फसल बंटवारे को राजस्व निर्धारण तथा राजस्व वसूली की सर्वोत्तम प्रणाली कहा गया है। इस प्रणाली के अन्तर्गत राज्य और किसान दोनों को एक बराबर मौसम की मार झेलनी पड़ती थी (प्राकृतिक विपदा द्वारा फसल का नुकसान होने की स्थिति में)। परन्तु, अबुल फज़ल के अनुसार, यह प्रणाली राज्य को मंहगी पड़ती थी क्योंकि उसे बड़ी मात्रा में निगरानी के लिए कर्मचारियों को रखना पड़ता था, जो फसल की निगरानी करते थे ताकि कटाई के पहले कोई गड़बड़ी न कर सके। जब औरंगजेब ने दक्खन में यह प्रणाली लागू की तो केवल फसल की निगरानी की व्यवस्था करने के कारण राजस्व वसूली की लागत दोगुनी हो गई।

2) ***कनकूत* (दानाबंदी)**: *कनकूत* शब्द *कन* और *कूत* के मिलने से बना है। *'कन'* का अर्थ अनाज और 'कूत' का मतलब मूल्यांकन या आकलन होता है। इसी प्रकार *'दाना'* का अर्थ अनाज है और *'बंदी'* का मतलब निर्धारण करना या निश्चित करना होता है। इस प्रणाली में अनाज उत्पादन (उत्पादकता) का आकलन किया जाता था। *कनकूत* में सर्वप्रथम रस्सी या चलकर, कदमों द्वारा, खेत को नापा जाता था।

इसके बाद उत्तम, मध्यम और निम्न श्रेणी तीनों प्रकार की ज़मीनों की प्रति *बीघा* उत्पादकता का आकलन किया जाता था और तद्नुरूप कुल भूमि पर राजस्व माँग तय की जाती थी।

3) ***ज़ब्ती***: यह मुगल कालीन राजस्व निर्धारण की महत्वपूर्ण प्रणाली थी। इसकी शुरुआत शेरशाह के काल से मानी जाती है। अकबर के ज़माने में कई बदलावों के बाद इसने अंतिम रूप ग्रहण किया।

शेरशाह ने राज्य की ओर से *पोलज* (वह भूमि जिस पर लगातार बुआई की जाती थीं) तथा *परौती* (वह भूमि जिसे यदा-कदा ही खाली छोड़ा जाता था) भूमि के लिए रे (प्रति बीघा उपज) निर्धारित किया। रे निर्धारण के लिए तीन दरों को विचार में रखा जाता था। यह दरें उत्तम, मध्यम और निम्न श्रेणी की भूमि की उत्पादकता पर आधारित थीं। इन तीन श्रेणी की भूमियों की औसत उत्पादकता का एक तिहाई कर के रूप में निर्धारित किया जाता था। अकबर ने शेरशाह के रे को अपनाया। अकबर ने *करोड़ी* नाम से जाना जाने वाला प्रयोग भी लागू किया। इस प्रयोग के अन्तर्गत 1574-1575 में पूरे उत्तर भारत में *करोड़ियों* को नियुक्त किया गया। सम्पूर्ण *जागीर* भूमि को *खालिसा* भूमि में परिवर्तित कर दिया गया। *करोड़ियों* द्वारा अपने क्षेत्रों की उत्पादकता, वास्तविक उपज और स्थानीय मूल्यों के बारे में जानकारी उपलब्ध कराई गई। इस जानकारी के आधार पर 1580 में अकबर ने *आईन-ए दहसाला* नामक नयी व्यवस्था शुरू की। इसके लिए विभिन्न फसलों के औसत उत्पादन और पिछले दस साल (अकबर के 15वें से 24वें शासकीय वर्ष) के औसत मूल्य की गणना की गई। औसत उत्पादन के कम से कम एक तिहाई हिस्से पर राज्य का अधिकार निश्चित किया गया। *करोड़ी* प्रयोग के तहत सभी प्रांतों में भूमि नापी गई। नाप के लिए जूट की रस्सियों के स्थान पर *तनाब* (लोहे की कड़ी लगी बांस की छड़ों) का उपयोग किया गया। विभिन्न क्षेत्रों को उनकी उत्पादकता और मूल्यों के आधार पर राजस्व की दृष्टि से *'दस्तूर'* प्रखंडों अथवा राजस्व क्षेत्रों में विभक्त किया गया। प्रत्येक *'दस्तूर'* में हर फसल का प्रति *बीघा* कर निर्धारण नगद धन के रूप में होता था और उसी के अनुरूप राज्य की माँग निर्धारित की जाती थी। अकबर के अधीन अपनाई गई *ज़ब्ती* व्यवस्था की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं:

i) भूमि की नाप अनिवार्य थी;

ii) प्रत्येक फसल के लिए *दस्तूर उल-अमल* या *दस्तूर* के नाम से जाना जाने वाला नगद राजस्व निर्धारित किया गया; तथा

iii) सभी वसूली नगद में की गई।

प्रशासनिक दृष्टि से *ज़ब्ती* व्यवस्था के कुछ लाभ इस प्रकार थे:

i) भूमि की नाप को कभी भी जांचा जा सकता था;

ii) निर्धारित *'दस्तूरों'* के कारण पदाधिकारी अपनी मनमानी नहीं कर सकते थे; और

iii) स्थाई *दस्तूरों* के निर्धारण के बाद भू-राजस्व माँग की अनिश्चितता और उतार-चढ़ाव में काफी कमी आ गई।

इस व्यवस्था की कुछ सीमाएँ भी थीं:

i) भूमि की उर्वरता समान न होने पर इसे लागू नहीं किया जा सकता था;

ii) उत्पादकता की अनिश्चिता का दंड केवल किसानों को ही भुगतना पड़ता था और यह किसानों के लिए हानिकारक था। अबुल फज़ल कहता है, 'अगर किसानों में *ज़ब्त* को वहन करने की क्षमता नहीं होती है तब राजस्व के रूप में उत्पादन का एक तिहाई हिस्सा लिया जाता है'।

iii) यह एक खर्चीली प्रणाली थी क्योंकि इसमें माप करने वाले दल को पारिश्रमिक के रूप में प्रति *बीघा* एक *दाम* की दर से *ज़ाबिताना* देना पड़ता था;

iv) माप करते समय कर्मचारियों द्वारा गड़बड़ी और धोखाधड़ी की संभावना बनी रहती थी।

ज़ब्ती व्यवस्था केवल साम्राज्य के मुख्य क्षेत्रों में लागू की गई। *ज़ब्ती* के अंतर्गत आने वाले क्षेत्रों में मुगल *सूबे* दिल्ली, इलाहाबाद, अवध, आगरा, लाहौर और मुल्तान प्रमुख थे। यहाँ तक कि इन *ज़ब्ती* प्रांतों में भी क्षेत्र विशेष की परिस्थितियों के अनुरूप कर निर्धारण की अन्य प्रणालियाँ भी प्रचलित थीं।

नस्क़ कर निर्धारण की एक स्वतंत्र प्रणाली थी। यह दूसरी प्रणालियों पर आधारित थी। किसी भी प्रकार के राजस्व निर्धारण और वसूली प्रणाली में इसे अपनाया जा सकता था। उत्तर भारत में *नस्क़-ए ज़ब्ती* जबकि कश्मीर में यह *नस्क-ए ग़ल्ला बख़्शी* के रूप में उपस्थित थी। जब इसे *ज़ब्ती* व्यवस्था से लागू किया जाता था तो वार्षिक माप न करके पुराने आंकड़ों को कुछ फेर बदल के साथ अपना लिया जाता था। *ज़ब्ती* व्यवस्था में प्रत्येक वर्ष माप किया जाता था। अतः प्रशासक और राजस्वदाता दोनों इससे मुक्त होना चाहते थे। इस प्रकार कुछ बदलावों के साथ *ज़ब्ती-ए हरसाला* या वार्षिक माप की प्रथा समाप्त कर दी गयी।

राजस्व ठेके की प्रथा (*इजारा*)

इजारा व्यवस्था या राजस्व ठेके की प्रथा इस युग की राजस्व व्यवस्था की एक अन्य विशेषता है। हालांकि नियमतः मुगलों ने इस प्रथा को स्वीकार नहीं किया परंतु व्यवहार में कभी-कभी गाँवों को *इजारे* या ठेके पर दे दिया जाता था। आमतौर पर उन गाँवों में यह व्यवस्था लागू होती थी, जहाँ के किसानों के पास खेती करने के लिए पर्याप्त साधन नहीं होते थे या फिर किसी दुर्भिक्ष के कारण खेती नहीं हो पाती थी। राजस्व अधिकारी या उनके संबंधी *इजारे* पर भूमि लेने के अधिकार से वंचित थे। यह उम्मीद की जाती थी कि राजस्व ठेकेदार किसानों से निर्धारित भू-राजस्व से ज्यादा राशि वसूल नहीं करेगा। परन्तु व्यवहार में ऐसा शायद ही होता था।

ज़ब्ती प्रांतों, गुजरात और मुगल दक्खन में *इजारा* प्रथा आमतौर पर प्रचलित नहीं थी। *खालिसा* भूमि में भी यह अपवाद ही था। परन्तु *जागीर* भूमियों में यह चलन सामान्य हो गया था। राजस्व प्राप्तकर्ता *जागीरदार* अपना अधिकार एक बड़ी राशि लेकर बेच दिया करते थे। अक्सर वे इसकी नीलामी कर दिया करते थे। ये ठेकेदार, जो *इजारे* पर भूमि लेते थे, किसानों से राजस्व वसूल करते थे।

कभी-कभी *जागीरदार* अपने मातहतों/सैनिकों को भी अपनी *जागीर* का एक हिस्सा राजस्व वसूली के लिए दे दिया करते थे। 18वीं शताब्दी तक *इजारा* व्यवस्था राजस्व निर्धारण और वसूली के लिए सामान्य तौर पर प्रचलित हो गई थी।

13.2.2 भू-राजस्व माँग का परिमाण

आइए पहले हम इस बात का परीक्षण करें कि राज्य भू-राजस्व के रूप में उपज का कितना अंश ग्रहण करता था। अबुल फज़ल कहता है कि राजा के अपनी प्रजा से वसूली करने के अधिकार पर कोई नैतिक सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती। 'प्रजा के जीवन और सम्मान के संरक्षक द्वारा अगर उसका सब कुछ हरण कर लिया जाता है तो भी उन्हें अपने संरक्षक के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए'। आगे वह कहता है कि 'न्यायप्रिय शासक' प्रजा से अपनी आवश्यकता से ज्यादा वसूल नहीं करता है। परन्तु यह सीमा उसी के द्वारा निर्धारित की जाएगी।

औरंगजेब ने स्पष्ट रूप से घोषित किया कि भू-राजस्व *शरीअत* के अनुसार अर्थात् कुल उत्पादन के आधे से ज्यादा नहीं लिया जाना चाहिए।

यूरोपीय यात्री पेलसर्ट, जो 17वीं शताब्दी में भारत आया था, उसने लिखा है कि 'किसानों से इतना ज्यादा ले लिया जाता था कि अपना पेट भरने के लिए उन्हें सूखी रोटी तक नहीं मिलती है।' इरफान हबीब लिखते हैं, 'किसानों पर राजस्व माँग के अलावा अन्य करों और पदाधिकारियों की नियमित और अनियमित वसूली का अपार बोझ था।'

शेरशाह ने भूमि की उर्वरता के आधार पर तीन प्रकार की फसल दरें अपनाई थीं और प्रत्येक फसल के लिए इन तीन दरों के अनुपात का 1/3 अंश राजस्व माँग के रूप में निर्धारित किया गया। अबुल फज़ल वर्णन करता है कि अकबर के अधीन 1/3 अंश राजस्व माँग निर्धारण की न्यूनतम दर थी। मुगल कालीन राजस्व के विषय में नवीन अध्ययनों से पता चलता है कि मुगलों के शासनकाल में भू-राजस्व कुल उत्पादन का 1/3 से 1/2 के बीच में था। और कुछ इलाकों में 3/4 भी था। सूक्ष्म पर्यवेक्षण करने पर पता चलता है कि विभिन्न प्रांतों (*सूबों*) में राजस्व माँग भिन्न-भिन्न थी। कश्मीर में सिद्धांततः यह माँग 1/3 थी परंतु वास्तविकता में 2/3 भाग वसूला जाता था। अकबर ने यहाँ कुल उपज के आधे भाग की माँग का आदेश दिया था।

थट्टा (सिंध) प्रांत में भू-राजस्व एक तिहाई की दर से लिया जाता था। *मज़हर-ए शाहजहानी* (1634 में सिंध के प्रशासन पर लिखा गया संस्मरण) के लेखक यूसुफ मिराक़ ने लिखा है कि जब *आईन-ए अकबरी* लिखा गया था, तब थट्टा की *ज़ागीर* तरखानों के पास थी, जो किसानों से कुल उत्पाद का आधे से ज्यादा राजस्व नहीं वसूल करते थे। कभी-कभी वे कुल उत्पाद का एक तिहाई या एक चौथाई हिस्सा ही वसूल करते थे।

अजमेर *सूबे* में भू-राजस्व की दरें भिन्न-भिन्न थीं। पूर्वी राजस्थान के उर्वर क्षेत्र में राजस्व माँग कुल उत्पाद का एक तिहाई से लेकर आधे तक होती थी। *आइन-ए अकबरी* के आधार पर इरफान हबीब कहते हैं कि मरूभूमि प्रदेशों में यह राजस्व माँग कुल उत्पाद का सातवाँ या आठवाँ हिस्सा होती थी। लेकिन सुनीता बुधवार ज़ैदी के अनुसार राजस्थान के किसी भी क्षेत्र में इतनी कम दर का उल्लेख अन्य स्रोतों में नहीं है। यहाँ तक कि जैसलमेर में भी कुल उत्पाद का पांचवाँ (*रबी* की फसल में) और *खरीफ* फसल का चौथाई हिस्सा वसूल किया जाता था।

मध्य भारत में यह दर 1/2, 1/3 और 2/3 के बीच थी। दक्खन में राजस्व की दर 1/2 (साधारण भूमि पर), 1/3 (कुओं द्वारा सिंचित भूमि पर), तथा 1/4 (उच्च किस्म की फसलों पर) थी।

औरंगजेब रसिकदास *करोड़ी* को लिखे गए अपने *फरमान* (आदेश) में कहता है कि जब किसान परेशान या संकट में हों और बटाई व्यवस्था से वसूली हो तो राज्य द्वारा कर के रूप में 1/2, 1/3 या 2/5 भाग राजस्व के रूप में वसूल किया जाना चाहिए। औरंगजेब के अधीन अकबर की तुलना में राजस्व दरें अधिक थीं। शायद इसका कारण यह था कि उस काल में कृषि मूल्यों में सामान्य रूप से वृद्धि हुई थी, अतः वास्तविक राजस्व दरों में प्रत्यक्षतः कोई वास्तविक वृद्धि नहीं हुई थीं।

राजस्थान के बारे में यह जानकारी मिलती है कि वहाँ वर्ग तथा जाति के आधार पर राजस्व दरें अलग-अलग होती थीं। एस. पी. गुप्ता, सतीश चन्द्र और दिलबाग सिंह के अध्ययनों से पता चलता है कि पूर्वी राजस्थान के कुछ *परगनों* में ब्राह्मणों और बनियों को रियायती दर पर राजस्व देना होता था।

यह कहा जा सकता है कि राजस्व माँग की दर कुल उत्पादन के आधे से लेकर एक तिहाई हिस्से तक थी। चूंकि यह राजस्व भूमि की प्रत्येक इकाई पर 'समरूप' ढंग से आरोपित किया जाता था, चाहे खेत का आकार और प्रकृति जैसी भी हो, यह 'प्रतिगामी' (regressire) प्रकृति का द्योतक है – छोटे खेतों वाले किसानों पर यह बोझ बड़े किसानों की तुलना में काफी भारी पड़ता था, क्योंकि छोटे किसानों को कम भूमि के आधार पर कोई रियायत नहीं थी।

बोध प्रश्न-1

1) निम्नलिखित को परिभाषित कीजिए:
गल्ला बख्शी..

....

कनकूत..

....

पोलज..

....

रे ....

....

2) *ज़ब्ती* व्यवस्था की विशेषताओं और सीमाओं को विश्लेषित कीजिए।

....

....

....

3) मुगल कालीन भारत में राजस्व माँग के पैटर्न पर विचार कीजिए।

....

....

....

13.2.3 भुगतान का माध्यम

कुछ क्षेत्रों में नगद धन के रूप में भू-राजस्व वसूलने की प्रथा 13वीं शताब्दी से ही प्रचलित पाई जाती है। मुगल काल में *ज़ब्ती* व्यवस्था के अंतर्गत किसानों को नगद रूप में राजस्व का भुगतान करना होता था। किसी भी परिस्थिति में नगदी व्यवस्था को वस्तु के रूप में परिवर्तित करने का कोई दस्तावेज उपलब्ध नहीं है। हालांकि फसल बंटवारे और *कनकूत* व्यवस्था में वस्तु के रूप में वसूली को नगदी में परिवर्तित करने की व्यवस्था थी। नगद राशि का परिवर्तन वस्तु के बाजार मूल्य पर आधारित होता था। साम्राज्य के प्रत्येक भाग में नगदी व्यवस्था पूर्ण रूप से स्थापित थी।

13.2.4 भू-राजस्व वसूली

गल्ला बख्शी के अधीन राज्य का हिस्सा सीधे खेत से वसूल कर लिया जाता था। अन्य व्यवस्थाओं में कटाई के समय राज्य अपना हिस्सा वसूल करता था।

अबुल फज़ल का मानना है कि '*रबी* की वसूली होली और *खरीफ* की दशहरा से शुरू हो जानी चाहिए। पदाधिकारियों को दूसरी फसल के तैयार होने के लिए विलंब नहीं करना चाहिए।'

खरीफ के मौसम में विभिन्न फसलों की कटाई विभिन्न समयों में होती है और तद्नुरूप फसलों के प्रकार के आधार पर राजस्व की वसूली तीन चरणों में की जाती थी। अतः *खरीफ* फसल का राजस्व किश्तों में वसूल किया जा सकता था।

रबी फसलों की कटाई कम अवधि में हो जाती थी। अधिकारी फसल की कटाई और उसे खेतों से हटाए जाने से पहले राजस्व वसूल करने का प्रयत्न करते थे। 17वीं शताब्दी के अंत तक अधिकारी अपने उतावलेपन में फसल कटने से पूर्व ही राजस्व की माँग करने लगे और यहाँ तक कि राजस्व न मिलने पर फसल काटने से भी रोकने लगे। इरफान हबीब टिप्पणी करते हैं: 'कटाई से पहले किसानों से राजस्व की माँग करना दमनात्मक कार्यवाई थी, क्योंकि उनके पास शायद ही कुछ बचा होता था। साथ ही साथ यह प्रथा एक सुचारू रूप से विकसित मुद्रा अर्थव्यवस्था का परिणाम थी क्योंकि इसके बिना इसका कार्यान्वयन संभव ही नहीं था। पदाधिकारी शायद यह उम्मीद करते थे कि किसान व्यापारियों और महाजनों के पास अपनी फसल बंधक रखकर ऋण ले सकते हैं।'

आमतौर पर *आमिल* या राजस्व संग्राहक राजकोष में राजस्व जमा किया करता था। अकबर ने किसानों को सीधे राजकोष में राजस्व जमा करने के लिए प्रोत्साहित किया। टोडरमल ने अनुमोदित किया था कि विश्वस्त गाँवों के किसान एक समय सीमा के भीतर राजकोष में अपना राजस्व जमा कर सकते थे और रसीद ले सकते थे। गाँव का लेखपाल, *पटवारी*, अपने खातों में भुगतान की गई राशि को लिख लेते थे। इरफान हबीब का मानना है कि संभवतः धोखाधड़ी और गबन को रोकने के लिए प्रशासन द्वारा ये कदम उठाए जाते थे।

13.3 राजस्व में राहत रियायतें

अब्बास खाँ अपनी पुस्तक *तारीख-ए शेरशाही* में लिखता है, 'शेरशाह ने घोषणा की थी कि रियायत की अनुमति कर निर्धारण के समय दी जा सकती थी वसूली के समय नहीं'। औरंगजेब ने मुहम्मद हाशिम *करोड़ी* को *फरमान* जारी करते हुए निर्देश दिया था कि फसल कट जाने के बाद कोई रियायत नहीं दी जा सकती थी।

राजस्व निर्धारण का तरीका कुछ भी हो, खराब फसल होने पर सब में रियायत का प्रावधान था। *गल्ला बख्शी* और *कनकूत* पर विचार करते हुए हम जान चुके हैं कि उपज के अनुरूप ही राज्य के अंश में भी बढ़ोतरी और कमी होती थी। *ज़ब्ती* व्यवस्था में निर्धारण करते समय ***नाबूद*** क्षेत्र (जिसमें फसल न हुई हो) को घटा कर बचे हुए क्षेत्र पर कर निर्धारण किया जाता था।

व्यवहारतः हर फसल पर पूरी राशि वसूल करना संभव नहीं था और हमेशा शेष राशि अगले साल की वसूली के लिए छोड़ दी जाती थी। ऐसा प्रतीत होता है कि मृत या खेत छोड़कर भागे हुए किसानों की बकाया राजस्व राशि उनके पड़ोसियों से वसूलने की आम प्रथा प्रचलित थी। औरंगजेब ने *खालिसा* और *जागीर* भूमियों में इस प्रथा को रोकने के लिए 1674-75 में *हस्ब-उल हुक्म* (राजकीय आदेश) जारी किया। उसका तर्क था कि किसी की बकाया राशि का जिम्मेदार किसी भी दूसरे किसान को नहीं ठहराया जा सकता था।

बीज और पशु खरीदने के लिए किसानों को ***तक़ावी*** (शाब्दिक अर्थः ताकत देने वाला) ऋण उपलब्ध कराया जाता था। अबुल फज़ल लिखता है, 'अमलगुजार को साधनहीन किसानों को ऋण देकर सहायता पहुंचानी चाहिए।' टोडरमल ने सलाह दी थी कि असहाय परिस्थितियों से घिरे और बीज और पशुधन से रहित किसानों को *तक़ावी* ऋण दिया जाना चाहिए। ये ऋण ब्याजमुक्त होते थे और इन्हें फसल की कटाई के समय चुकाना होता था। यह अग्रिम राशि *चौधरियों* और *मुकद्दमों* के माध्यम से मिलती थी। अबुल फज़ल कहता है कि ऋण धीरे-धीरे वसूल करना चाहिए।

राज्य द्वारा खेती के विकास और विस्तार के लिए नए कुएँ खोदे गए और पुराने कुओं की मरम्मत की गयी।

बोध प्रश्न-2

1) भू-राजस्व के भुगतान का माध्यम क्या था?

....

....

....

2) प्राकृतिक विपदा के समय किसानों को किस प्रकार की रियायतें दी जाती थीं?

....

....

....

13.4 मुगलों का भू-राजस्व प्रशासन

खालिसा भूमि से संबद्ध राजस्व प्रशासन व्यवस्था के विषय में पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है। परन्तु *जागीर* प्रशासन के विषय में बहुत कम जानकारी उपलब्ध है। चूंकि *जागीरदारों* का स्थानांतरण दो या तीन वर्षों में हो जाता था, अतः उन्हें स्थानीय लोगों की राजस्व प्रदान करने की सामर्थ्य और स्थानीय प्रथाओं का कोई ज्ञान नहीं होता था। इस प्रकार की जानकारी प्राप्त करने के लिए उन्हें स्थानीय अधिकारियों की सहायता लेनी पड़ती थी। राजस्व के क्षेत्र में हमें तीन प्रकार के पदाधिकारियों का पता चलता है:

क) *जागीरदारों* के कर्मचारी और प्रतिनिधि;

ख) स्थाई स्थानीय पदाधिकारी जो अधिकांशतः अनुवांशिक होते थे। *जागीरदारों* के स्थानांतरण से उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता था; और

ग) *जागीरदारों* की सहायता करने और उन्हें नियंत्रण में रखने के लिए केन्द्रीय पदाधिकारी।

ग्रामीण स्तर पर अनेक राजस्व पदाधिकारी थे:

i) ***करोड़ी***: 1574-75 में *करोड़ी* के पद का निर्माण किया गया। उसके कर्तव्यों का वर्णन करते हुए अबुल फज़ल कहते हैं कि वह राजस्व के निर्धारण और वसूली दोनों का प्रभारी था। शाहजहाँ के शासनकाल में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन आया। अब प्रत्येक *महल* (राजस्व क्षेत्र) में *अमीनों* की नियुक्ति की गई और उन्हें कर निर्धारण का कार्य सौंपा गया। इस परिवर्तन से अब *करोड़ी* (या *आमिल*) का दायित्व *अमीन* द्वारा निर्धारित राजस्व को वसूल करने तक सीमित रह गया।

   प्रांत का *दीवान करोड़ी* को नियुक्त करता था। यह आशा की जाती थी कि वह किसानों के हितों का ख्याल रखेगा। *करोड़ी* और उनके कर्मचारियों द्वारा वसूली गयी वास्तविक राशि की जाँच गाँव के *पटवारी* के कागजों की सहायता से की जाती थी।

ii) ***अमीन***: *अमीन* दूसरा प्रमुख राजस्व पदाधिकारी था। जैसा कि हम पहले ही बता चुके हैं *अमीन* का पद शाहजहाँ के शासनकाल में निर्मित किया गया था। उसका मुख्य कार्य राजस्व निर्धारण करना था। उसकी भी नियुक्ति *दीवान* करता था। *करोड़ी* और *फौज़दार* के साथ-साथ वसूले गये राजस्व को सुरक्षित पहुंचाने की जिम्मेदारी भी उसकी थी। प्रांत का *फौज़दार, अमीन* और *करोड़ी* की गतिविधियों पर निगरानी रखता था। वह उनकी पदोन्नति की अनुशंसा भी किया करता था।

iii) ***कानूनगो***: यह *परगने* का स्थानीय राजस्व पदाधिकारी था और आमतौर से वह लेखपाल या लेखा. जोखा करने वाले वर्गों या जातियों में से नियुक्त किया जाता था। यह अनुवांशिक पद था, परन्तु प्रत्येक नये व्यक्ति की नियुक्ति के लिए पृथक राजकीय आदेश आवश्यक था।

   निगारनामा-ए मुंशी का लेखक *कानूनगो* को भ्रष्टाचार के लिए दोषी ठहराता है क्योंकि 'उन्हें स्थानांतरित या पदच्युत होने का कोई भय नहीं था'। लेकिन भ्रष्टाचार या कर्तव्य विमुखता का आरोप सिद्ध होने पर राजकीय आदेश से उन्हें हटाया भी जा सकता था। राजस्व रसीदों, भूमि के माप संबंधी आंकड़ों, स्थानीय राजस्व दरों और *परगने* के रीति-रिवाजों से संबद्ध कागजातों को व्यवस्थित करके रखना *कानूनगो* का मुख्य कार्य था। आमतौर पर यह माना जाता था कि *कानूनगो* को अगर पिछले सौ वर्षों का राजस्व आँकड़ा प्रस्तुत करने को कहा जाए, तो उसे ऐसा करने में सक्षम होना चाहिए।

   जागीरदारों के प्रतिनिधि या कर्मचारी आमतौर पर स्थानीय परिस्थितियों से परिचित नहीं होते थे, वे आमतौर पर *कानूनगो* द्वारा दी गई जानकारी पर ही भरोसा करते थे। *कानूनगो* को पारिश्रमिक के रूप में कुल राजस्व का 1 प्रतिशत दिया जाता था, लेकिन अकबर ने उन्हें अलग वेतन देना आरंभ कर दिया था।

iv) ***चौधरी***: यह भी *कानूनगो* के समान एक महत्वपूर्ण राजस्व पदाधिकारी था। अधिकांश मामलों में वह उस क्षेत्र का प्रमुख *ज़मींदार* होता था। उसका काम केवल कर वसूली में सहायता करना था। वह छोटे *ज़मींदारों* की जमानत भी दिया करता था।

   चौधरी तकावी ऋण का बंटवारा करता था और उसके भुगतान की जिम्मेदारी भी लेता था। वह *कानूनगो* पर नियंत्रण रखने का कार्य भी करता था।

   दस्तूर-उल अमल-ए आलमगीरी से पता चलता है कि *चौधरी* को कोई बहुत ज्यादा भत्ता नहीं दिया जाता था। परन्तु यह संभव है कि उसे काफी मात्रा में राजस्व मुक्त अनुदान (*इनाम* भूमि) मिलते थे।

v) ***शिकदार***: शेरशाह के अधीन यह राजस्व प्रभारी था और कानून एवं व्यवस्था की देख-रेख करता था। ऐसा प्रतीत होता है कि अकबर के शासनकाल के उत्तरार्द्ध में वह *करोड़ी* का अधीनस्थ अधिकारी हो गया। अबुल फज़ल लिखता है कि आपात स्थिति में *शिकदार* भुगतान का आवश्यक अनुमोदन दे सकता था। बाद में उसे अपना अनुमोदन दरबार में प्रस्तुत करना होता था। अपने अधिकार-क्षेत्र में हुई चोरियों के लिए उसे ही जिम्मेदार ठहराया जाता था।

vi) ***मुकद्दम और पटवारी***: *मुकद्दम* और *पटवारी* ग्रामीण स्तर के अधिकारी थे। *मुकद्दम* गाँव का मुखिया होता था। अपनी सेवा के बदले में उसके द्वारा वसूले गये राजस्व में से 2.5 प्रतिशत हिस्सा उसे प्राप्त होता था।

पटवारी गाँव की ज़मीन, प्रत्येक किसान द्वारा जोते जाने वाले खेतों, फसल के प्रकारों और बंजर भूमि का हिसाब-किताब रखता था। उसके ***बहीखाते*** में किसानों के नाम लिखे होते थे। *बितिकची* बही संबंधी जरूरी कागज और आँकड़े तैयार करता था जिसके आधार पर कर निर्धारण और वसूली होती थी।

प्रत्येक *परगने* में दो अन्य अधिकारी होते थे। *फोतेदार* या *खज़ानादार* (कोशपाल) और *कारकुन* या *बितिकची* (लेखपाल)। शेरशाह के शासनकाल में दो *कारकुन* (लिपिक) नियुक्त किये जाते थे, एक हिंदी लिपिक और दूसरा फ़ारसी लिपिक। इनका प्रमुख कार्य आँकड़े तैयार करना था। लेकिन 1583-1584 से लेखा के लिए केवल फारसी भाषा का उपयोग होने लगा।

फौजदार केन्द्रीय शासन की सैन्य और पुलिस शक्ति का प्रतिनिधित्व करता था। उसका एक मुख्य कार्य ***ज़ोरतलब*** (जिनके विरुद्ध राजस्व वसूल करने के लिए शक्ति का प्रयोग करना पड़े) *ज़मींदारों* और किसानों से राजस्व वसूल करने में *जागीरदार* या *आमिल* की सहायता करना था।

वक़ाया नवीस और *सवानिह निगार* (समाचार लेखक) का कार्य अनियमितताओं और दमनात्मक कार्यवाइयों से संबंधित मामलों को केन्द्र तक पहुंचना था।

बोध प्रश्न-3

1) *करोड़ी* के कार्यों और कर्तव्यों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

2) निम्नलिखित को परिभाषित कीजिएः

i) *ज़ोरतलब ज़मींदारः* ....

....

ii) *फोतेदारः* ....

....

iii) *वक़ाया नवीसः* ....

....

13.5 भू-राजस्व के अतिरिक्त अन्य कर

साम्राज्य की कुल आय में भू-राजस्व के अतिरिक्त अन्य करों के योगदान का ठीक-ठीक ब्योरा देना बहुत कठिन है। शीरीन मूसवी (1990) के अनुसार गुजरात और आगरा *सूबों* (प्रांत) में यह क्रमशः 18 प्रतिशत और 15 प्रतिशत के आसपास था जबकि अन्य *सूबों* में यह 5 प्रतिशत से कम था।

यहाँ हम विभिन्न करों के बारे में विस्तार से चर्चा नहीं करेंगे। हम अपनी चर्चा इन करों के स्वरूप और इन्हें वसूल करने के तरीकों तक ही सीमित रखेंगे।

हस्तशिल्प उत्पादन पर कर, बाजार कर, अंतःराष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय दोनों के व्यापारों पर सीमा शुल्क और *राहदारी* (पथकर) और सिक्कों की ढलाई पर कर आय के मुख्य स्रोत थे। इनके अलावा युद्ध की लूट, *नजरानों* और भेंटों से भी राजकोष समृद्ध होता था।

बाजार में बेची जाने वाली लगभग सभी वस्तुओं पर कर लगता था। इनमें कपड़ा, चमड़ा, अनाज, पशु, आदि प्रमुख हैं। कोई वस्तु जितनी बार भी बेची जाती थी उस पर उतनी बार कुछ कर देना होता था। हमारे पास कराधान की सही-सही दर की गणना करने के पर्याप्त आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं। आमतौर

पर जो उल्लेख मिलता है उससे प्रतीत होता है कि ये कर काफी ज्यादा थे। पीटर मंडी (1632) के विवरण के अनुसार, पटना का गवर्नर कर वसलूने में बहुत निर्ममता बरतता था, और यहाँ तक कि दूध बेचने वाली औरतों से भी कर वसूल किया जाता था। एक अन्य समकालीन लेखक ने भी लिखा है कि फूल बेचने वाले से लेकर मिट्‌टी के बर्तन बेचने वालों तक, उच्च कोटि का मलमल बनाने वालों से लेकर मोटा कपड़ा बनाने वालों तक को, हर तरह के व्यापारी को कर देना पड़ता था।

व्यापारियों के अलावा कारीगरों को भी अपने उत्पादन पर कर देना पड़ता था। सभी प्रकार के कपड़ों, रेशम और ऊनी वस्त्र पर *कटरापार्चा* कर लगाया जाता था। नील, शोरा और नमक पर भी कर लगाया जाता था। कुछ मामलों में, जैसे कि अकबर के समय में पंजाब में नमक पर लगाया गया कर उसकी मूल लागत के दोगुना से भी ज्यादा था।

सीमा शुल्क और पागमन शुल्क

जब कोई वस्तु एक जगह से दूसरी जगह ले जाई जाती थी तब उस पर कर लगाया जाता था। हमें सीमा शुल्क दरों की थोड़ी बहुत जानकारी मिलती है। बंदरगाहों से लाई जाने वाली प्रत्येक वस्तु पर कर लगाया जाता था। अबुल फज़ल के अनुसार, अकबर के समय में इस प्रकार के शुल्क ढाई प्रतिशत से ज्यादा नहीं लगाए जाते थे। सत्रहवीं शताब्दी के आरंभ के एक दस्तावेज में बताया गया है कि वस्तुओं पर ढाई प्रतिशत, खाद्य सामग्री पर तीन प्रतिशत और धन (सोना और चाँदी) पर दो प्रतिशत कर लगाया जाता था। 17वीं शताब्दी के अंत में सीमा शुल्क चार से पाँच प्रतिशत के बीच था।

औरंगजेब ने अलग-अलग समुदायों पर अलग-अलग पारगमन कर लगाया था। यह दर मुसलमानों के लिए ढाई प्रतिशत, हिंदुओं के लिए पाँच प्रतिशत और विदेशियों के लिए साढ़े तीन प्रतिशत थी। यह दर पूरे साम्राज्य में लागू थी।

52 रुपए से कम मूल्य की वस्तु कर से मुक्त होती थी। कुछ समय के लिए औरंगजेब ने मुसलमानों को सभी सीमा शुल्कों से मुक्त कर दिया था, परन्तु जल्द ही उसने फिर उन पर ढाई प्रतिशत कर लगा दिया।

सम्राट के निर्देशों के बावजूद व्यापारियों से अक्सर निर्धारित सीमा शुल्क से ज्यादा राशि वसूल कर ली जाती थी। हमें सीमा शुल्क के बारें में विदेशियों की शिकायतों का पता चलता है। अंग्रेजों ने 1615 सी ई में, शिकायत की थी कि अहमदाबाद से सूरत तक वस्तुओं को लाने में तीन बार अलग-अलग शुल्क वसूला जाता था। समय-समय पर अंग्रेज और डच सीमा शुल्क में छूट प्राप्त करने के लिए सम्राट से *फरमान* प्राप्त किया करते थे फिर भी अक्सर सीमा शुल्क चौकियों पर शुल्क का भुगतान करना पड़ता था। मुगल सीमा क्षेत्र के अतिरिक्त स्वायत्त शासक भी अपने इलाके से गुजरने वाली वस्तुओं पर शुल्क लगाते थे। मोरलैंड कहता है कि व्यापार और वाणिज्यिक करों के बोझ की ठीक-ठीक गणना करना संभव नहीं है क्योंकि सभी अपनी मनमर्जी से कर लगाते थे और शुल्क उगाहते थे। एक राज्य में या क्षेत्र में कर देने के बावजूद व्यापारियों को दूसरे क्षेत्र में पुनः कर देना पड़ता था।

सीमा शुल्क के अलावा *राहदारी* कर या पारगमन शुल्क भी वसूल किया जाता था यह एक प्रकार का पथकर या चुंगी थी। विभिन्न क्षेत्रों से गुजरने वाली वस्तुओं पर यह चुंगी लगायी जाती थी। हालांकि प्रत्येक स्थान पर थोड़ी-थोड़ी राशि ही देनी पड़ती थी परन्तु कुल मिलाकर यह राशि बड़ी हो जाती थी। यहाँ तक कि अपने क्षेत्र से गुजरने वाली वस्तुओं पर *ज़मींदार* भी चुंगी वसूला करते थे।

17वीं शताब्दी के एक समकालीन विवरण (खाफी खाँ) के अनुसार *राहदारी* को अवैध माना जाता था परन्तु इसके नाम पर व्यापारियों और व्यवसायियों से बड़ी मात्रा में राशि वसूल कर ली जाती थी। यह कर नदी मार्गों पर भी लगाया जाता था।

टकसाल से आय

टकसाल में लिया जाने वाला शुल्क साम्राज्य के लिए आय का एक अन्य प्रमुख स्रोत था। राज्य द्वारा वसूले गए टकसाल-शुल्क को *महसूल-ए दारूल ज़र्ब* कहा जाता था। यह शुल्क कुल ढाली गयी मुद्रा की पाँच प्रतिशत था। इसके अतिरिक्त दो अन्य शुल्क भी लिए जाते थे। इन्हें *रूसूम-ए अहलकारान* (पदाधिकारियों का देय) और *उजरत-ए कारीगरान* (कारीगरों की मजदूरी) कहा जाता था।

13.6 भू-राजस्व के अतिरिक्त अन्य करों की वसूली का तरीका

भू-राजस्व के समान अन्य करों की वसूली के लिए भी एक सुगठित और व्यवस्थित तंत्र स्थापित किया गया था। साम्राज्य में भू-राजस्व और अन्य करों में हुई आयों का अलग-अलग हिसाब रखने का प्रयत्न किया जाता था। इस दृष्टि से करों को *माल-ओ-जिहात* और *सायर जिहात* में वर्गीकृत किया गया। प्रथम भू-राजस्व से और द्वितीय व्यापार और वाणिज्य पर लगाये गये करों से संबद्ध था। कर निर्धारण और वसूली की सुविधा की दृष्टि से *महलात-ए सायर* या *सायर महल* नामक राजस्व संबंधी अलग क्षेत्र विभाजन बड़े शहरों और नगरों में किया गया। *महल* शुद्ध राजस्व क्षेत्र था जो *परगना* (जो राजस्व और क्षेत्रीय विभाजन दोनों था) से भिन्न था।

आईन-ए अकबरी में अहमदाबाद, लाहौर, मुल्तान और भडौंच जैसे क्षेत्रों के लिए *सायर महल* और शहरों के राजस्व आँकड़ों को अलग से दर्ज किया गया है। सत्रहवीं शताब्दी के उपलब्ध राजस्व आँकड़ों में प्रत्येक शहर के *सायर महलों* (राजस्व क्षेत्रों) का उल्लेख अलग से किया गया है। उदाहरण के लिए, सूरत की सूची में दिए गए राजस्व *महल* जैसे *महल फ़र्ज़ा, महल खुश्की, महल नमकज़ार, महल चबूतरा-ए कोतवाली, महल दलाली, जौहरी वा मनहारी, महल दारूल ज़र्ब, महल गल्ला मंडी* और *महल जहाज़ात* का उल्लेख मिलता है।

ये राजस्व क्षेत्र या तो *जागीर* के रूप में दिये जाते थे अथवा इनका राजस्व वसूल करके राजकोष में सीधे जमा करा दिया जाता था। शुल्क चौकियों और टकसालों को छोड़कर अन्य करों को वसूल करने वाले अधिकारियों की पदवी भू-राजस्व पदाधिकारियों (*अमीन, करोड़ी, कानूनगो, चौधरी*) के अनुरूप ही होती थी।

बंदरगाहों पर अधिकारियों का एक अलग वर्ग होता था। *मुतसद्दी* बंदरगाह का मुख्य पदाधिकारी या अधीक्षक होता था। उसकी नियुक्ति सीधे सम्राट करता था। कर की वसूली करना उसका काम था। सीमा शुल्क चौकियों में व्यापारियों से बात करके निर्धारित किए गए मूल्यों के आधार पर ही वस्तुओं का बाजार मूल्य तय होता था।

मुतसद्दी के अधीन कई पदाधिकारी कार्यरत होते थे, जो सीमा शुल्क लगाने, वसूल करने और खातों के रखरखाव में उसकी सहायता करते थे। इनमें *मुशरिफ, तहवीलदार* और *दरोगा-ए खजाना* प्रमुख हैं। इन पदाधिकारियों की नियुक्ति भी राजदरबार से होती थी। इन सीमा शुल्क गृहों के अपने कर्मचारी और कुली भी हुआ करते थे।

विस्तृत आँकड़ों के अभाव में कुल वसूली जाने वाली राशि का अनुमान करना कठिन है। शीरीन मूसवी ने प्राप्त आँकड़ों का आकलन करके अनुमान लगाया है कि राज्य की आय में इन करों का योगदान लगभग 10 प्रतिशत के करीब था।

बोध प्रश्न-4

1) भूमि कर के अतिरिक्त अन्य मुख्य करों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

2) *राहदारी* और सीमा शुल्क किस प्रकार वसूल किया जाता था।

....

....

....

13.7 सारांश

भू-राजस्व राज्य की आय का प्रमुख स्रोत था। अंग्रेज प्रशासक इसे भूमि पर लगान समझते थे और

मानते थे कि भूमि का मालिक राजा हुआ करता था। परन्तु बाद के अध्ययनों से पता चलता है कि भू-कर फसल पर लगाया जाता था न कि भूमि पर।

मुगल भू-राजस्व व्यवस्था की प्रमुख विशेषताओं को संक्षेप में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है:

क) प्रत्येक क्षेत्र में भू-राजस्व की मात्रा अलग-अलग थी,

ख) भू-राजस्व के निर्धारण के लिए कई प्रकार की प्रणालियाँ अपनाई जाती थीं। हालांकि *ज़ब्ती* राजस्व निर्धारण की सर्वप्रमुख प्रणाली थीं, परन्तु *गल्ला बख़्शी* और *कनकूत* जैसी प्रणालियाँ भी प्रचलित थीं,

ग) इस संदर्भ में महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि अधिकांश मामलों में (कम से कम *ज़ब्ती* प्रांतों में) राजस्व नगद में वसूल किया जाता था। इस प्रकार मुद्रीकरण और बाजार अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहन मिला,

घ) प्राकृतिक विपदा के समय रियायतें दी जाती थीं। राज्य *नाबूद* भूमि पर छूट और *तकावी* नामक अग्रिम ऋण के रूप में रियायतें दिया करता था, और

ड.) भू-राजस्व प्रशासन से कई पदाधिकारी जुड़े हुए थे। इनमें *करोड़ी, अमीन, कानूनगो, चौधरी, शिकदार, फोतेदार, बितिकची, दीवान, फौजदार, वकाया नवीस, सवानिह निगार,* आदि उल्लेखनीय हैं।

इस इकाई में हमने यह बताने की कोशिश की है कि भू-राजस्व के अलावा राज्य की आय के और भी कई स्रोत थे। यह आय बाज़ार कर, सीमा शुल्क, *राहदारी,* सिक्का ढलाई शुल्क, आदि के माध्यम से होती थी।

13.8 शब्दावली

बही	आँकड़ा-पुस्तक, लेखा पुस्तिका/पंजी
हासिल	वास्तविक वसूला गया राजस्व
जमा	अनुमानित राजस्व
मौरूसी	अनुवांशिक
नाबूद	अस्तित्वहीन (वह भूमि जिस पर उस वर्ष खेती नहीं हुई हो)
पट्टा	राजस्व विभाग द्वारा किसानों को प्रदान किया जाने वाला लिखित दस्तावेज जिसमें राजस्व माँग की दर, आदि का उल्लेख होता था
कबूलियत	स्वीकृति-पत्र
रैय्यत	किसान
तक़ावी	कृषि ऋण
उम्माल	*आमिल* का बहुवचन; राजस्व संग्राहक
ज़ोरतलब	विद्रोही (क्षेत्र अथवा पदाधिकारी)

13.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) देखें उप-भाग 13.2.1

2) पहले *ज़ब्ती* को परिभाषित कीजिए। इसका उद्भव बताइए और फिर इसकी विशेषताओं और कमियों का उल्लेख कीजिए। देखें उप-भाग 13.2.1

3) विश्लेषण कीजिए कि मुगल कालीन भारत में राजस्व माँग एक समान नहीं थी। बताइए कि यह विभिन्न क्षेत्रों में कैसे भिन्न थी। देखें उप-भाग 13.2.2

बोध प्रश्न-2

1) देखें उप-भाग 13.2.3

2) राहत उपायों की प्रकृति का उल्लेख कीजिए। किस प्रकार के ऋण दिये जाते थे? तक़ावी ऋण क्या था? यह क्यों और किन शर्तों पर दिया जाता था? इन ऋणों के वितरण में कौन से अधिकारी संलग्न होते थे, आदि। देखें भाग 13.3

बोध प्रश्न-3

1) विश्लेषण कीजिए कि अकबर ने *करोड़ी* का पद क्यों स्थापित किया था? इस समय उसे क्या-क्या अधिकार दिये गये थे? बाद के शासकों के काल में उसके अधिकारों, आदि कार्यों में क्या परिवर्तन आया? देखें भाग 13.4

2) देखें भाग 13.4

बोध प्रश्न-4

1) आप इसमें चुंगी कर, टकसाल शुल्क, उत्पाद शुल्क, आदि का उल्लेख कर सकते हैं। देखें भाग 13.5

2) देखें भाग 13.6

13.10 संदर्भ ग्रंथ

फुकाज़ावा, एच., (1991) द *मिडिवल डेकनः पेज़ेन्ट्स, सोशल सिस्टम्स एंड स्टेट्स, 16 टू 18 सेंचुरी* (दिल्लीः ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस).

हबीब, इरफान, *मुगलकालीन भारत की कृषि व्यवस्था, 1556-1707* (हिंदी संस्करण).

मूसवी, शीरीन, (1990) द *इकॉनॉमी ऑफ द मुगल एम्पायर, c. 1600* (नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस).

रेचौधरी, तपन और इरफान हबीब, (1982) द *कैम्ब्रिज इकॉनामिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया,* भाग 1 (दिल्लीः कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय प्रेस).

13.11 शैक्षणिक वीडियो

डिस्कोर्स ऑन मुगल इकॉनॉमी

https://www.youtube.com/watch?v=FOZaH2L6b0I

इकॉनॉमिक हिस्ट्री ऑफ मुगल इंडिया

https://www.youtube.com/watch?v=XM3Afvx-nag

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY